मंजरी

स्त्री के मन की

www.emaniari.com

RNI Title Code: BIHBIL02442

वर्ष 2025

अंक 29

सफरनामा औरतों का
कुछ ज़िंदगियाँ बहुत सी सीख

BIHAR TOURISM
Blissful Bihar

VISIT BIHAR

The place of Enlightenment and Wisdom. A world famous UNESCO heritage site Mahabodhi Temple.

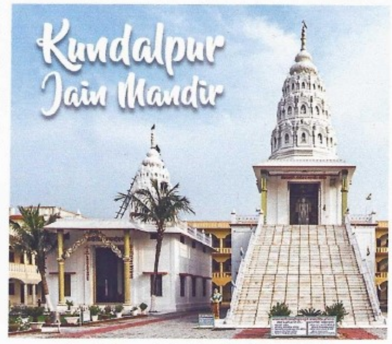

Kundalpur Jain Mandir holds both spiritual and historical significance as it is believed to be the birthplace of Lord Mahavira.

A sacred place built to commemorate the birthplace of Shri Guru Gobind Singh ji Maharaj, the 10th Guru of Sikhs.

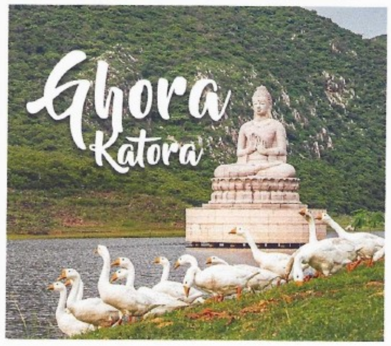

A picturesque natural lake with lush green surroundings.

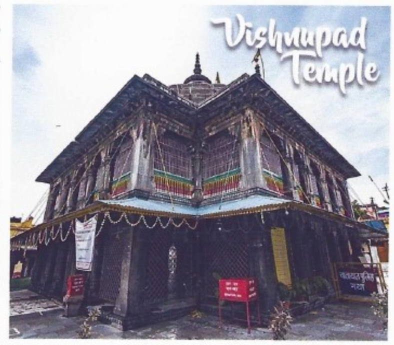

One of the oldest and most prominent Hindu temples dedicated to Lord Vishnu where pilgrims perform 'Pind Daan' ritual for their ancestors.

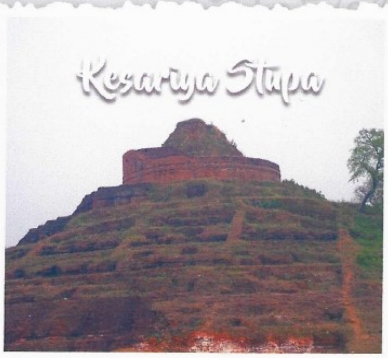

Situated in the East Champaran Kesariya Stupa is the Wolrd largest Stupa among all the buddhist stupas.

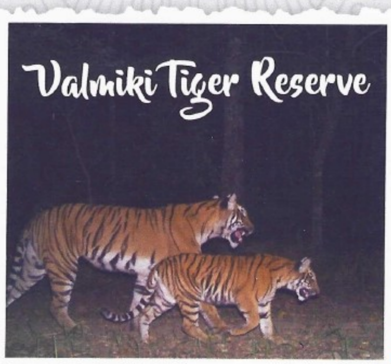

Situated in the West Champaran district of Bihar, the green landscapes with wildlife sightings is a must-visit spot for nature & adventure lovers.

Bihar's first Glass Bridge at Rajgir's Nature Safari offers a breathtaking view of the beautiful surroundings.

Best Places to Visit in Bihar

"Bihar, a land of rich cultural and spiritual heritage, offers a blend of history, spirituality, and natural beauty. From the UNESCO World Heritage Site Mahabodhi Temple to the serene Ghora Katora Lake and the wild allure of Valmiki Tiger Reserve, the state is a treasure trove for travelers. Explore timeless temples like Vishnupad Temple, dedicated to Lord Vishnu, and Kundalpur Jain Temple, celebrating Lord Mahavira's birthplace. Don't miss Patna Sahib, the birthplace of Guru Gobind Singh Ji, the 10th Sikh Guru. Bihar invites you on a journey of sacred shrines, scenic landscapes, and unmatched tranquility."

BIHAR TOURISM
Blissful Bihar

@tourismbihargov

www.tourism.bihar.gov.in

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है **'मंजरी'**।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी को. शिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवेदनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामा. जिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेहद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

हमारी बात

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं
साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास,
पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र
पटना विवि

परामर्श

डा. शरद कुमारी
सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
स्वतंत्र लेखिका एवं शोधकर्ता

सुजाता गुप्ता
लेखिका, कवयित्री एवं
अनुवादक

संपादकीय

भारत वीराओं की धरती है। भूसुता सीता के साहस और उभय भारती की प्रखर बुद्धि की साक्षी रही इस धरती ने अपने गर्भ में न जाने कितनी ही भामतियों के त्याग और बीबीजान की दानशीलता को धारण कर रखा है। वैदिक युग से लेकर आज तक भारत ने सैकड़ों ऐसी स्त्रियों को जन्म दिया है जिन्होंने अपनी शक्ति, बुद्धि, साहस, सहनशीलता, त्याग, सेवा, चतुराई, कला, संगीत और अनगिनत दूसरी प्रतिभाओं से प्रदेश को उनपर गर्व करने का अवसर दिया है। महिलाओं की महत्ता के सन्दर्भ में लार्मिटन का कथन है कि 'सम्पूर्ण महान कार्य के प्रारम्भ में किसी न किसी स्त्री का हाथ रहा है।'

लेकिन यह सब एकाएक नहीं हुआ। स्त्रियों को एक–एक पायदान ऊपर जाने में असह्य पीड़ा और कठिनाइयों से जूझना पड़ा। अपनी सहनशीलता और साहस की अंतहीन परीक्षाओं से गुजरना पड़ा, तब कहीं जाकर कोई सीता, कोई भामती और कोई भारती इतिहास के पन्नों में अपना नाम दर्ज करा पाई। इस अंक का शीर्षक "सफरनामा औरतों का" उनके संघर्षों की गवाही देता है और इकाई से सैंकड़ा बनने तक के उनके सफ़र को बयां करता है।

आज तक माता सीता को लोगों ने सिर्फ राम की पत्नी या एक दैवीय शक्ति के प्रतिरूप में देखा, सुना और जाना है। लेकिन बहुत कम ही लोग जानते हैं कि माता सीता राजा जनक की बेटी, राजा दशरथ की पुत्रवधू होने के साथ साथ एक महान योद्धा और बहुत कर्मठ स्त्री थीं। माता सीता के इस अनदेखे रूप की, क्या सीता के जीवन की आज की दुनिया में कोई प्रासंगिकता है? महिला सशक्तिकरण, संघर्ष और हाशिए पर होने के बारे में वैश्विक चर्चाओं में, देवी सीता की छवि अक्सर एक केंद्रीय प्रतीक के रूप में उभरती है।

हमने हमेशा महाभारत या अन्य धार्मिक ग्रंथों को पुरुष की नजर से देखा और पढ़ा है। लेकिन यह कहानी 'द्रौपदी' के दृष्टिकोण से लिखी गई है। द्रौपदी अपने अधिकार के लिए लड़ने वाली अपने साथ हुए अपमान का प्रतिशोध लेने वाली, पति का मार्गदर्शन करने वाली, अपने लिए वर का चुनाव करने वाली एक 'नायिका' जो कभी देवी ना बन सकी।

हमारा समाज हमेशा से ही पुरुष प्रधान रहा है....रामायण की कथा भी इस बात का पुरजोर समर्थन करती नजर आती है। यहां हमेशा एक ऐसी स्त्री को आदर्श या देवी का दर्जा दिया जाता है, जो हमेशा अपने पति या पिता के अधीनस्थ रहकर जीवन व्यतीत करती है। एक ऐसी स्त्री ही क्यों' आदर्श' कहलाती है, जिसका अपने जीवन के महत्वपूर्ण फैसलों पर कोई नियंत्रण नहीं होता। वह हर परिस्थिति में अपने पति को 'परमेश्वर' के स्थान पर रखकर पूजती है। रामायण की कथा में सीता का चित्रण उन्हें इससे भी कहीं ज्यादा कमजोर प्रतीत करवाता हैं। रामायण से जुड़ी कई कहानियों में यह अक्सर पढ़ने में आता है कि रावण की कैद से खुद को आजाद

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

आवरण चित्र

वरिष्ठ अतिथि कलाकार
अनु प्रिया

लोगो डिजाइन

दीया भारद्वाज

प्रबंधन / व्यवस्था

राहुल कुमार
कुमार गौरव

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612.2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

करवाने के लिए सीता स्वयं पूर्ण रूप से सक्षम थीं लेकिन फिर भी उन्होंने रावण की कैद में रहकर अपमान सहना स्वीकार किया। केवल अपने पति को उनकी शक्ति और साहस का एहसास करवाने के लिए और पुरुषवादी समाज की रीढ़ को मजबूत बनाए रखने के लिए उन्होंने हर दुख सहे। जिस स्थान पर वह अपने वजूद और साहस का परिचय दे सकती थीं, वहां उन्हें और कोमल और कमजोर दर्शाया गया।

कभी घर–परिवार की इज्जत बनकर तो कभी अपने पति की जीती हुई ट्रॉफी बनकर उसे अपने आप को हर समय त्यागना पड़ता है और यकीन मानिए उसे इस बाबत कोई गुरेज भी नहीं। वह खुश है इन तमगों के साथ। शर्म और लाज को महिलाओं का गहना कहा जाता है। शर्म किस बात की! शायद अपनी इच्छाओं को दर्शाने की, अपने अधिकार को बुलंद करने की और लाज, शायद अपने प्रति अत्याचारों को बयां करने की। इन दो दायरों में बंधी स्त्री केवल तभी तक सीता है जब तक वह समाज द्वारा निर्मित इन सभी मापदंडों पर खरी उतरती है और जब वह स्त्री अपनी आवाज बुलंद करती है तो वह 'माता' सीता जैसी आदर्श नहीं रह जाती, द्रौपदी बन जाती है जिसे कभी नायिका तो कभी खलनायिका का दर्जा दिया जाता है।

मंजरी का यह अंक "औरत का सफरनामा" एक दस्तावेज है, जो महिलाओं के जीवन और उनकी यात्राओं की कहानी को दर्शाती है। इस अंक में उन अलग–अलग महिलाओं की कहानियों को प्रस्तुत किया गया है, जो विभिन्न परिस्थितियों में एक–दूसरे से मिलती हैं और उनके जीवन को अलग–अलग तरीकों से प्रभावित करती हैं। कोख के अंधेरे से लेकर कब्र के अंधेरे तक लगातार और अथक संघर्ष मगर संघर्ष का इतिहास ये कहता है कि दुनिया की तमाम चिंतनशील औरतों ने कलम से, कर्म से और खामोश आँसुओं से भी फसाने लिखे हैं। ऋग्वेद दुनिया की पहली किताब है जिसमें 27 औरतों ने भी मुक्तमन से अपना चिंतन पेश किया था। सूर्या, सावित्री, लोपामुद्रा, घोषा, काक्षावती, इंद्राणी जैसी कितनी ही चिंतनशील औरतें उस काल में हुई थीं। गार्गी, अनुसूया, सुलभा, मदालसा, इन्होंने तो मार्गदर्शन भी किया था।

समय बदला। यूनान में सैफो नाम की एक शायरा हुई जिन्हें नज़्म लिखने के जुर्म में जिलावतन होना पड़ा। जापान में पहला नॉवेल लिखने वाली एक महिला थीं पर समाज ने खुद की रचना पर उनका नाम छापने की इजाज़त नहीं दी। कश्मीर की लल्लेश्वरी और हब्बा ख़ातून को शायरी करने की सज़ा में घर छोड़कर जंगलों में भटकना पड़ा। पाकिस्तान की शायरा सैदा गजदार ने लिखा है– "क़ानून और अख्तियार उन हाथो में है जो फूल, इल्म और आज़ादी के खिलाफ फ़ैसले सुनाते हैं। औरत तुम घर की मलिका हो, बच्चे की माँ हो, तुम सिर झुकाए, खिदमत करती, कितनी अच्छी लगती हो। तुम कितनी पुरविकार और महफूज हो। बुलंद मुकाम और जन्नत की हकदार हो, इसीलिए तुम्हें समझाते हैं, ठीक से रहो।"

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

श्रोतः अलका प्रमोद (www.rekhta.org)

अनुक्रम

4

11

9

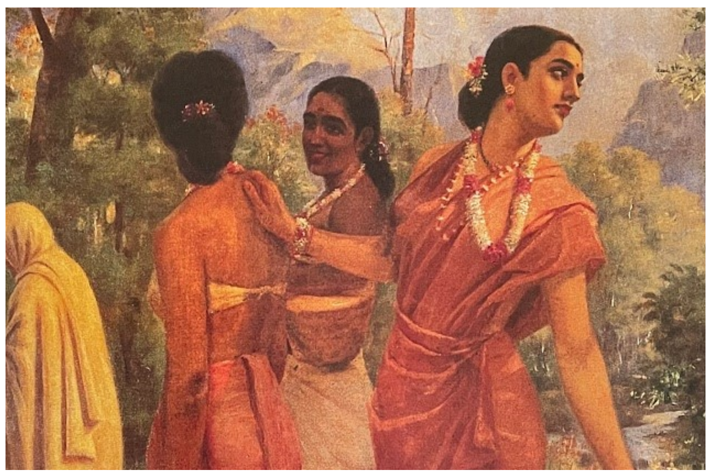

15

19

अनु प्रिया
(कलाकार/लेखिका)

सुपौल बिहार में जन्मीं अनु प्रिया जी के साठ से अधिक किताबों के आवरण एवं पत्र–पत्रिकाओं में रेखाचित्र प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य अकादमी, राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, अल्टरनोट प्रकाशन, अगोर प्रकाशन, प्रकाशन विभाग आदि से किताबों के आवरण पर निरंतर इनके द्वारा बनाये गए चित्र का प्रकाशन होता रहता है।

थीम पेपर

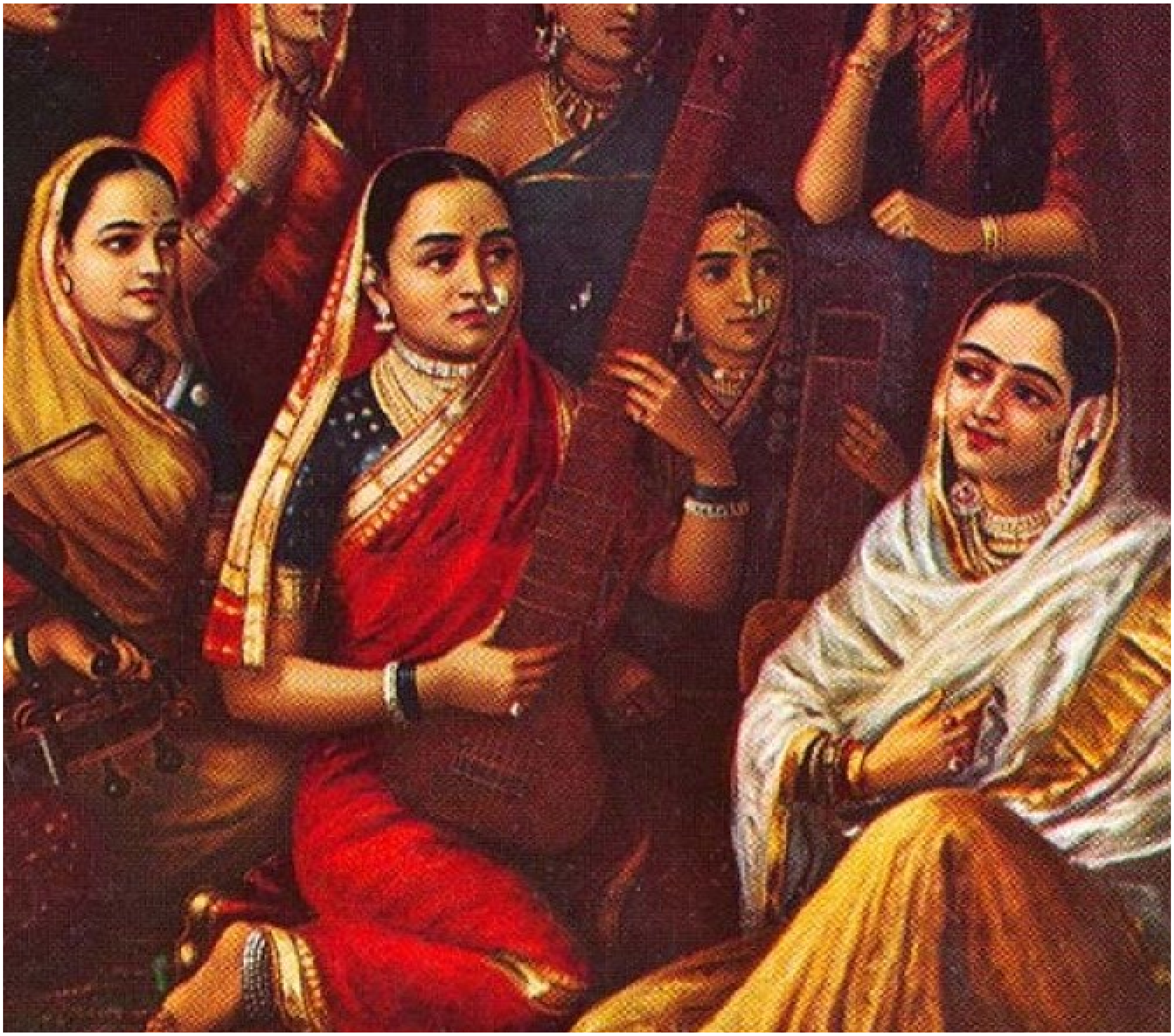

शक्ति यानी शांत और दृढ़ स्त्री

शुवी झा

वैदिक काल से ही, हिंदू परंपरा ने शक्ति, या दिव्य शक्ति जिसके द्वारा सब कुछ बनाया या बदला जाता है, को स्त्री के रूप में व्यक्त किया है, इसलिए ईश्वर की हमारी समझ और पूजा में देवी की केंद्रीय भूमिका है।

शक्ति शांत होते हुए भी मजबूत है, प्रेममय होते हुए भी दृढ़ है, सुंदर होते हुए भी उग्र है, सृजनात्मक होते हुए भी बेजोड़ क्रोध करने में सक्षम है। हालाँकि, हिंदू समाज, जो मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक समाज है, ने हमेशा "आदर्श महिला" को परिभाषित करते हुए शक्ति के कोमल गुणों को ही ऊपर उठाया है। लेकिन हमारे सामूहिक विवेक के सबसे गहरे स्तरों पर, मेरा मानना है कि हम सभी जानते हैं कि यह नारी में निहित

करुणा और परोपकार ही है जो महिला को अपनी उग्र शक्ति की विशालता को एक बार में और केवल तभी प्रदर्शित करने में संयम बरतने के लिए मजबूर करता है जब इसकी आवश्यकता होती है।

वास्तव में प्रेम, करुणा, पोषण, निःस्वार्थ सेवा, अनुग्रह, सम्मान– नारीत्व के सार का इतना बड़ा हिस्सा– उन अटूट धागों के रूप में काम करता है जो स्वस्थ परिवारों और समाजों को एक साथ बांधे रखते हैं। लेकिन केवल हमारे कोमल पक्ष को विशेषाधिकार देने से न केवल महिला जाति, बल्कि मानव जाति का ताना–बाना कहाँ रह गया है? क्या इसने हमें ऐसी कमजोरी के लिए खोल दिया है जो हानिकारक है? हम इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि पिछली सदी में, दुनिया भर में कई महिलाओं ने धर्मनिरपेक्ष – यानी शैक्षिक और आर्थिक क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है, लेकिन सामाजिक–धार्मिक क्षेत्र के बारे में क्या? क्या हम इस बात से इनकार कर सकते हैं कि भारत में और यहाँ तक कि हमारे समुदायों में भी, हमारी कई बहनें यह महसूस करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं कि वे अपने परिवार पर बोझ नहीं हैं, स्वतंत्र रूप से सोचने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, विच. ारों के मिलन के आधार पर विवाह करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, अपमानजनक रिश्तों को छोड़ने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, रचनात्मक जुनून का पीछा करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, कुछ प्रार्थनाओं या संस्कारों में भाग लेने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, बस होने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं?

आज हम कहाँ हैं, यह जानने के लिए हमें यह जानना होगा कि हम कहाँ थे। हमारे धर्मग्रंथ, जहाँ पर्याप्त हिंदू "इतिहास" प्रस्तुत करते हैं, वहीं "उसकी कहानी" के मोती भी देते हैं। वैदिक काल में हिंदू नारीत्व के आदर्श उदाहरण मौजूद थे। महिलाएँ जो साध्यवधू थीं, यानी वे जो पारिवारिक जीवन की जिम्मेदारियाँ उठाती थीं, और ब्रह्मवादिनी, यानी वे जो अपना जीवन वेदों के अध्ययन और आत्म–साक्षात्कार के लिए समर्पित करती थीं। ऐसी भी महिलाएँ थीं जिन्होंने रूढ़िवादिता को त्याग दिया और केवल बाद की तपस्या को चुना। वेद आध्यात्मिक समानता या नर और मादा देवताओं की समान स्थिति की प्रशंसा करते हुए भजनों से भी भरे पड़े हैं, जबकि उनकी प्रकृति में अंतर को उजागर करते हैं। कई विषय प्रणय और विवाह के इर्द–गिर्द केंद्रित हैं, जबकि अन्य दार्शनिक और शैक्षिक जुड़ाव पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इस प्रकार, पुरुष और महिला की शाश्वत भूमिका, चाहे वे दैवीय हों या नश्वर, जन्मजात मतभेदों को अलग रखना और सामाजिक व आध्यात्मिक पूर्ति के लिए एक साथ आना है– एक संपूर्ण के दो हिस्से या एक गाड़ी के दो पहिये, जो गाड़ी को आगे बढ़ाने के लिए अपने–अपने तरीके से अपना वजन खींचते हैं।

बराबर, विपरीत नहीं। बराबर, लेकिन अलग। बराबर, पूरक और पूरक। इस ढांचे के भीतर, महिला की पारंपरिक सामाजिक भूमिका घर की देखभाल करने वाली, निःस्वार्थ प्रेम और भावनात्मक समर्थन प्रदान करने वाली, पोषण करने वाली, नैतिक स्तंभ और घर की पूजा–अर्चना और पारिवारिक धार्मिक अनुष्ठानों की रखवाली करने वाली थी। हालाँकि, रास्ते में कहीं न कहीं साध्यवधू ने पदभार संभाला और ब्रह्मवादिनी को वैदिक इतिहास के इतिहास में गहराई से दफना दिया। हमने यह भी देखा है कि सत्ता, लालच, ईर्ष्या और अन्य बुराइयों के कारण भ्रम के साथ–साथ बढ़ते पश्चिमीकरण के कारण, घर पर रहने वाली माताओं और पत्नियों के लिए सम्मान और प्रशंसा बढ़ती गई और घटती गई।

पिछले कुछ सहस्राब्दियों में, और अन्य संस्कृतियों की महिलाओं की तरह, हमें गलत तरीके से कमजोर, सरल–दिमाग, आश्रित, आसक्त, तर्कहीन, अयोग्य या अशुद्ध के रूप में आंका गया है और उन भूमिकाओं में धकेल दिया गया है जो इन नकारात्मक रूढ़ियों को दर्शाती हैं। नतीजतन, हमारी कई पूर्वज माताओं के जीवन और विकल्पों को प्रेरणा से नहीं, बल्कि अपेक्षाओं से आकार मिला था। और निष्पक्ष रूप से कहें तो इनमें से कई अपेक्षाएं उन पर अन्य महिलाओं द्वारा थोपी गई थीं। हालांकि, हिंदू महिलाओं के लिए अनोखा उपहास यह है कि कई सामाजिक–धार्मिक प्रथाएं और दृष्टिकोण जिन्होंने महिलाओं की कुछ महान, कुछ उच्चतर नियति को दबा दिया है, वे वैदिक महिला के विचारों के सीधे विरोध में हैं – जो कि हमारी अंतर्निहित दिव्यता, आत्म–साक्षात्कार के लिए हमारी समान क्षमता और धर्म के अनुसार जीवन जीने के आदेश की आवश्यक हिंदू शिक्षाएं हैं।

लेकिन कई मौकों पर हिंदू इतिहास में महिलाओं ने यथास्थिति के खिलाफ खड़े होने, गलत को सही करने या बस नेतृत्व करने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन किया है, और ऐसा उन्होंने शान और विनम्रता के साथ किया है। ये साहसी महिलाएं वेदों के समय से लेकर पिछले साल तक, हर युग में फैली हुई हैं। ऋग्वेद में जिन 407 ऋषियों को शाश्वत सत्य का ज्ञान दिया गया,

उनमें से 28 महिलाएँ थीं– महान गार्गी उनमें से एक थीं। उन्हें वेदांत के सबसे गहन प्रश्नों– ब्रह्म की प्रकृति और ब्रह्मांड की उत्पत्ति– का उत्तर देने का श्रेय दिया जाता है। बृहदारण्यक उपनिषद में वर्णित ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ एक सार्वजनिक बहस के दौरान और पुरुष दार्शनिकों से भरी एक अदालत में, गार्गी ने महान ऋषि पर एक के बाद एक कई सवाल दागे, जिससे एक ऐसा व्यक्ति स्तब्ध रह गया जो पहले कभी स्तब्ध नहीं हुआ था। एक बार तो याज्ञवल्क्य ने गार्गी को चेतावनी भी दी कि अगर वह आगे बढ़ती रही तो उसका सिर कट जाएगा, इसलिए वह विनम्रतापूर्वक एक तरफ हट गई, इस उम्मीद में कि अन्य लोग भी वहीं जारी रखेंगे जहाँ वह ऋषि को ले जा रही थी। अन्य लोगों ने भी अपनी बात रखी, लेकिन वह स्पष्ट रूप से वह उत्तर पाने में विफल रहे जिसकी वह तलाश कर रही थी, इसलिए उसने आखिरी बार बात की। यह उनके अंतिम दो प्रश्न थे, जिन्होंने महान ऋषि को अव्यक्त, अज्ञात, निराकार ब्रह्म की प्रकृति, या उसके अभाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया।

मध्य युग में मीराबाई थीं, जिन्होंने शाही जीवन की परंपराओं और उस समय की महिलाओं के लिए 'उचित' व्यवहार के खिलाफ लड़ाई लड़ी। एक विपुल भक्ति कवि–संत, मीराबाई धार्मिक स्वतंत्रता के पक्षधरों में से पहली थीं। उन्होंने अपने नए परिवार के देवता की पूजा करने के लिए मजबूर होने के बजाय, अपने बचपन के देवता भगवान कृष्ण की पूजा जारी रखते हुए अपने ससुराल वालों के खिलाफ विद्रोह किया। बाद में, वह अपने ससुराल वालों द्वारा जान से मारने की कई कोशिशों से बच निकलीं, क्योंकि उन्हें उनके धर्म के सार्वजनिक अभ्यास से कोई ऐतराज नहीं था। कल्पना कीजिए कि एक राजकुमारी बेखौफ होकर गाती और नाचती है, और वह भी आम लोगों सहित अन्य कृष्ण भक्तों के बीच। उसने अपने जीवन के एक लक्ष्य– ईश्वर के प्रति निस्वार्थ समर्पण को आगे बढ़ाने के लिए सामाजिक मानदंडों और परंपराओं के खिलाफ विद्रोह किया।

झांसी की रानी जैसी अन्य महिलाओं ने हाल के इतिहास के पन्नों को सुशोभित किया है। लक्ष्मी बाई, उनका दिया गया नाम, साधारण परिवार से था। एक पुजारी की बेटी, उन्हें शाही दरबार में अपने पिता के प्रभाव और शायद उनके खुले विचारों के कारण युद्ध कला में प्रशिक्षित किया गया था। 14 साल की छोटी उम्र में, उनकी शादी झांसी के राजा से हुई थी, लेकिन उन्हें अपने जन्मजात नेतृत्व कौशल के लिए जल्द ही पहचान मिली। 1857 में अंग्रेजों से स्वतंत्रता के लिए भारत में सबसे शुरुआती लड़ाई में एक प्रमुख खिलाड़ी के रूप में लंबे समय से पहचाने जाने वाली, वह युद्ध के मैदान में एक निडर योद्धा के रूप में मर गईं, एक हाथ में तलवार, दूसरे में लगाम, अपने राज्य और अपने लोगों की स्वतंत्रता के लिए लड़ती रहीं।

(www.hinduamerican.org/blog में पूर्व प्रकाशित आलेख का अंश)

समय से आगे थीं अपाला और विदुषी मैत्रेया

वमाता अदितिः ये दक्ष प्रजापति की कन्या एवं महर्षि कश्यप की पत्नी थीं। इन्होंने अपने पुत्र इन्द्र को वेदों एवं शास्त्रों की इतनी अच्छी शिक्षा दी कि उस ज्ञान की तुलना किसी से सम्भव नहीं थी। यही कारण है कि इन्द्र अपने ज्ञान के बल पर तीनों लोकों का अधिपति बना। अदिति को अजर–अमर माना जाता है। साथ ही चारों वेदों की प्रकाण्ड विदुषि थी।

देवसाम्राज्ञी शचीः ये इन्द्र की पत्नी थीं। वे वेदों की प्रकांड विद्वान थीं। ऐसी मान्यता है कि ऋग्वेद के कई सूक्तों पर शची ने अनुसन्धान किया। शची देवी पतिव्रता स्त्रियों में श्रेष्ठ मानी जाती हैं। शची को इंद्राणी भी कहा जाता है। विद्वानों का कहना है कि ये विदुषी के साथ–साथ महान नीतिवान भी थीं। इन्होंने अपने पति द्वारा खोया हुआ सम्राज्य एवं पद प्रतिष्ठा ज्ञान के बल पर ही दोबारा प्राप्त किया था।

ब्रह्मवादिनी अपालाः वे अत्रि मुनि के वंश में ही उत्पन्न हुई थीं। ऐसा कहा जाता है कि अपाला को कुष्ठ रोग हो गया था। इसके चलते इनके पति ने इन्हें घर से निकाल दिया था। ये पिता के घर चली गई और आयुर्वेद पर अनुसंधान करने लगीं। मान्यता है कि सोमरस की खोज इन्होंने ही की थी। इन्द्र देव ने सोमरस इनसे प्राप्त कर इनके ठीक होने में चिकित्सीय सहायता की। आयुर्वेद चिकित्सा से ये विश्वसुंदरी बन गईं और वेदों के अनुसंधान में संलग्न हो गईं। ऋग्वेद के अष्टम मंडल के 91वें सूक्त की 1 से 7 तक ऋचाएं इन्होंने संकलित कीं।

विदुषी मैत्रेयीः ये महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी थीं। इन्होंने पति के श्रीचरणों में बैठकर वेदों का गहन अध्ययन किया। कहा जाता है कि पति परमेश्वर की उपाधि इन्हीं के कारण जग में प्रसिद्ध हुई क्योंकि इन्होंने पति से ज्ञान प्राप्त किया था। इन्होंने ज्ञान के प्रचार–प्रसार के लिए कन्या गुरुकुल स्थापित किए थे।

सीता : एक स्वतः स्वतंत्र विद्रोहिणी

प्रकृति (वनस्पति) का प्रतीकवाद अंतर्निहित है और स्पष्ट रूप से सीता के जीवन की कहानी की हर प्रमुख घटना में मौजूद है, जो रामायण में उनके जन्म से शुरू होती है। जनक कहते हैं, ''एक बार, जब मैं खेत में हल चला रहा था, एक लड़की मेरे हल के पीछे से निकली'' (रामायण .1.65. 15)। जनक द्वारा सीता के जन्म का इस प्रकार वर्णन किया गया है, ''जो गर्भ से पैदा नहीं हुई'' (अयोनिजा)। यह पृथ्वी से जंगल में अपने सबसे प्राकृतिक रूप में पौधे के जीवन के स्वतःस्फूर्त अंकुरण की दृष्टि को ध्यान में लाता है। जंगल में पौधे को निकलने के लिए हल चलाना और बीज बोना आवश्यक नहीं है। यह जंगल की सबसे प्राकृतिक और सामान्य रूप से होने वाली प्रक्रिया है। इसलिए सीता का जन्म दो विषयों को इंगित करता है।

सीता अपने जन्म और अत्रिया की पत्नी अनसूया से विवाह की कहानी भी सुनाती हैं जो इस खंड में वर्णित कहानी को एक बार फिर दोहराती है (रामायण 2.110.30–110.50)। सीता ने अपनी जन्म कहानी को अधिक यथार्थवादी ढंग से सुनाया। वह बताती हैं कि ''जब जनक खेतों की जुताई कर रहे थे, मैंने धरती को तोड़ दिया।'' फिर वह कहती हैं कि राजा जनक मुट्ठी भर अनाज बो रहे थे, ''जब उन्होंने मुझे देखा, तो मेरा शरीर पूरी तरह से मिट्टी से सना हुआ था और वे चकित हो गए।'' जबकि जनक के संस्करण में यह कहकर कहानी को थोड़ा सा बदल दिया गया है कि वह एक यज्ञ के उद्देश्य से भूमि जोत रहे थे, सीता के संस्करण में वास्तव में कहा गया है कि वह वास्तव में खेती कर रहे थे, उन्होंने कहा कि पहले उन्होंने उस भूमि को जोता और फिर सीता को खोजने के बाद बीज

बोए। सीता का जन्म भी प्राकृतिक है। सीता का जन्म अचानक और स्वतःस्फूर्त है। वास्तव में यह एक गुप्त जन्म है और वनस्पति जगत के अलावा मानव जगत में ऐसा कभी नहीं हुआ। यह वास्तव में यहाँ दो कारकों का प्रतिनिधित्व करता है– एक है स्वतःस्फूर्त जन्म, दूसरा है खेती की प्रक्रिया, सभ्यता का प्रयास। सीता का जन्म प्रकृति द्वारा अपने जीवन को स्वाभाविक रूप से जन्म देने के रूप में हुआ हो सकता है, लेकिन वह सभ्यता के प्रयास के रूप में पाई जाती है (यहाँ हल चलाने का कार्य सभ्यता के प्रयास के रूप में उल्लेखनीय है), उसका पालन–पोषण ज्ञात सांस्कृतिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है, लेकिन प्रकृति (या वनस्पति जीवन) द्वारा अपनी सबसे प्राकृतिक परिस्थितियों में इच्छित अज्ञात स्वतःस्फूर्त जंगली विकास नहीं है। इसलिए सीता की कहानी की शुरुआत में ही, महिलाओं और प्रकृति का प्रतीकवाद निकटता से जुड़ा हुआ है, जबकि संस्कृति (खेती) के सभ्य प्रयास कहानी की अंतर्निहित धारा बनाते हैं। जैसे–जैसे कहानी आगे बढ़ती है, सीता (सामान्य रूप से महिलाओं) से जुड़ी इस मुक्त स्वभाव वाली प्रकृति और सभ्यता/संशोधनों की नियंत्रित शक्तियों के कारण उनके सामने आने वाली कठिनाइयों के साथ जारी रहती है।

सीता की दत्तक मां, जनक की पत्नी, का केवल उल्लेख किया गया है, और सीता के बचपन से लेकर उनकी शादी तक की कोई भी जानकारी रामायण में अल्प है। सीता और उनकी दत्तक मां सुनयना के बीच कोई बातचीत रामायण में जगह नहीं पाती है। हालांकि, तेलुगु लोक रामायण में सीता के बचपन की घटनाओं में से एक, जिसे उनके पिता जनक ने शिव के धनुष को उठाने और उस पर डोरी चढ़ाने की प्रतियोगिता की व्यवस्था करने का कारण बताया है, उसे उनके चंचल बचपन से जोड़ता है और उनकी अपार शक्ति का प्रमाण भी देता है। जनक कहते हैं कि, ''एक बार अपनी सखियों के साथ गेंद खेलते समय सीता ने धनुष को बहुत आसानी से उठा लिया।'' उनके पिता जनक को उनकी ताकत पर आश्चर्य हुआ, क्योंकि उनकी जानकारी में शिव का धनुष किसी ने नहीं उठाया था। इसलिए, उनके पिता जनक ने फैसला किया कि जो कोई भी उनकी बेटी से विवाह करना चाहता है, उसे उस धनुष को उठाने और उस पर डोरी चढ़ाने में सक्षम होना चाहिए। तेलुगू लोक रामायण में शिव के धनुष पर डोरी चढ़ाने की परीक्षा के महत्व को शक्ति परीक्षण के रूप में सही रूप से समझा गया है।

जनक ने विस्तार से बताया कि कैसे कोई भी अन्य नायक कभी भी धनुष नहीं उठा सका और रामायण में यह भी बताया गया है कि धनुष को स्वयंवर (वर का चयन) के लिए दरबार में कैसे लाया गया था। इसे एक स्टील के बक्से में, आठ पहियों वाली गाड़ी पर रखा गया था, इसे खींचने के लिए 5000 मजबूत लोगों की आवश्यकता थी (रामायण 1. 66.5)। राम ने इसे तुरंत उठा लिया और जब उन्होंने इस पर प्रत्यंचा चढ़ाने की कोशिश की तो धनुष टूट गया (रामायण 1.66.16–17)।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह शक्ति बाद में उसके जीवन की अनेक चुनौतियों का सामना करने में उसकी सहायता करती है, जैसे कि वनवास के दौरान राम के साथ चलना, रावण की कैद में रहना, अग्नि परीक्षा से गुजरना, तथा एक और वनवास की इच्छा करना, और परिणामस्वरूप अपने बच्चों का वन में स्वतंत्र रूप से पालन–पोषण करना।

सीता अपने विवाह के पुरुष की तरह ही शक्तिशाली और मजबूत हैं, एक विनम्र महिला नहीं, हालांकि यह छवि उनके साथ जुड़ गई। कहानी की शुरुआत में इन दो घटनाओं, सीता के जन्म और विवाह से, रामायण स्थापित करती है कि सीता प्रकृति की तरह सहज और साथ ही मजबूत और स्वतंत्र महिला हैं। इसलिए, राम से जुड़ने से पहले सीता प्रकृति की शक्ति और प्राकृतिक क्षमताओं का अवतार थीं। एक और बात जिस पर यहां ध्यान देने की जरूरत है, वह है उनकी दत्तक मां सुनयना की छवि। हालांकि नाम में उल्लेख किया गया है, उनकी उपस्थिति केवल क्षणभंगुर है। सीता के जीवन में उनकी भूमिका सबसे अधिक अनुपस्थित है। इसलिए शुरू में, रामायण इसे सीता की एक वीर गाथा के रूप में स्थापित करती है, जिसमें राम शक्ति में उनसे मुकाबला करने की कोशिश करते हैं।

सीता और राम

विवाह के बाद राम के साथ उनका जीवन पंद्रह वर्षों तक चलता है, जिसमें से चौदह वर्ष वनवास में व्यतीत होते हैं, जबकि लगभग एक वर्ष अयोध्या में व्यतीत होता है, उसके बाद उन्हें अकेले ही अपने दूसरे वनवास पर भेज दिया जाता है। ये सीता के जीवन के सबसे महत्वपूर्ण वर्ष हैं, और उनकी शक्ति की परीक्षा भी।

प्रकृति के साथ उनका जुड़ाव स्पष्ट है। राम के साथ वन में जाने के बारे में उनका आग्रह केवल एक कर्तव्यपरायण पत्नी का आग्रह नहीं लगता, बल्कि ऐसा लगता है कि वह फलदार वृक्षों, झीलों और झरनों से भरे जंगल में जीवन जीने की लालसा रखती है, जहाँ वह राम के साथ क्रीड़ा करते हुए पानी में छप–छप कर सकती है और फूलों और पक्षियों को देखने का आनंद ले सकती है। हालाँकि, यह केवल प्रकृति का हिस्सा बनने की उनकी स्त्रैण इच्छा को दर्शाता है, इस तथ्य के बावजूद कि वह जंगल के खतरों को नहीं जानती हैं। सीता ने जंगल में रहने के साथ आने वाली जीवन शैली में आने वाले बदलाव को नहीं समझा है। सीता को चुनौतीपूर्ण तपस्वी जीवन शैली के बारे में भी पता है जब तक कि कैकेयी उनके लिए छाल के वस्त्र नहीं लाती हैं, जिसे देखकर सीता फूट–फूट कर रोती हैं। उन्हें इन कपड़ों का कोई अनुभव नहीं था और राम को उन्हें पहनने में उनकी मदद करनी पड़ी (रामायण . 2.33.10–15)।

प्रथम योद्धा

''सीता ने रेशमी वस्त्र पहने,
कांपती और डरी हुई,
उस छाल के कोट पर नजर डाली जिसे उसे पहनना था,
एक शर्मीली हिरणी की तरह जो जाल की ओर देखती है।
शर्मिंदगी और परेशानी के कारण रोते हुए
उसने रानी के हाथ से पोशाक ले ली।
सुंदरी, अपने पति के पास
जो स्वर्ग के गायक सम्राट से मेल खाती थी, चिल्लाई
''वे अपने वनवासी वस्त्र कैसे बांधते हैं,
जंगल के वे संन्यासी?''
जनक की जाति का गौरव
हैरान, उदास आकर्षक चेहरे के साथ खड़ा था।
एक कोट को महिला की उंगलियों ने पकड़ लिया,
एक को उसने अपनी गर्दन के चारों ओर कमजोरी से बाँधा,
लेकिन फिर से असफल हो गई, फिर से,
उस जंगली पोशाक से भ्रमित होकर जिसे उसने कभी पहना ही नहीं था।
फिर जल्दी से राम,
जो सभी गुणों का सम्मान करते हैं, ने
उसे खुरदरी छाल की लबादा
पहना दी''

हालांकि सीता को जंगल के कठिन जीवन का अहसास नहीं था, लेकिन वनवास के लिए जाने, धन–संपत्ति, सुख–सुविधाएं और यहां तक कि रेशमी कपड़े तक त्यागने के लिए तैयार रहना, वन और उसके प्राकृतिक सहज जीवन के प्रति उनकी तत्परता और पसंद को दर्शाता है। शक्ति के रूप में, वह प्रकृति के साथ एकाकार होकर रहना चाहती थीं।

सीता बिना राम

सीता के जीवन के अंतिम भाग में, गर्भवती होने के बावजूद सीता को धोखे से राम से अलग कर दिया जाता है। सीता राम और लक्ष्मण के साथ जाती हैं और पहले वनवास के दौरान वनवास की चुनौतियों का सामना करती हैं। हालाँकि, इस दूसरे वनवास में, अपने जीवन के अंतिम चरण में, वह अपने जीवन की खुद मालिक होती हैं। वह अपने फैसले खुद लेती हैं और अपने फैसलों के परिणामों का सामना खुद करती हैं। इस दूसरे वनवास के दौरान सीता अपने जीवन से एक मजबूत व्यक्ति के रूप में उभरती हैं। यह दूसरा वनवास सीता के सबसे साहसी और दृढ़ इच्छाशक्ति वाली महिला के रूप में वास्तविक प्रकृति को दर्शाता है। यही कारण है कि कहानी के इस हिस्से ने नारीवादी विद्वानों के कई प्रस्तुतीकरण और संशोधनों को आकर्षित किया था।

जीवन का अंत

सीता के लिए जीवन का अंत उतना ही स्वाभाविक है जितना कि उसका जन्म। सीता ने वही किया जो एक साहसी महिला करती है जब उसे दो बार एक ही प्रश्न का सामना करना पड़ता है। उसने अपना जीवन खुद जिया, अपने बच्चों को पूरी तरह से खुद ही पाला। इसलिए अंत में जब राम ने उसे अपनी पवित्रता साबित करने के लिए एक और अग्नि परीक्षा देने के लिए कहा, तो सीता को उनकी बात मानने का कोई कारण नहीं मिला, जबकि उसने अपनी पवित्रता को एक अलग तरीके से साबित किया, अग्नि में नहीं, बल्कि धरती में प्रवेश करके। उसने जवाब देने या बहस करने से इनकार कर दिया, लेकिन राम के अभिमान को ठेस पहुँचाते हुए हमेशा के लिए चले जाना चुना। उसने केवल इतना कहा, ''अगर मैं सच्ची और शुद्ध हूँ, तो कृपया मुझे अपने में समाहित कर लें माधव'' (रामायण.उत्तरकांडम. खंड CX: 1910)। धरती ने उसे अपने में समाहित कर लिया।

सीता उसी स्थान पर वापस चली गईं जहाँ से उनका जन्म हुआ था। हालाँकि राम एकपत्नीव्रत बने रहे, लेकिन सीता के लिए इसका कोई महत्व नहीं था और यह एक उथला दावा है। रामायण संस्कृति के निर्माण में अपनी उचित हिस्सेदारी बनाए रखने के लिए महिलाओं के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करती है– वास्तव में यह अंतिम संघर्ष है और समाज के क्रमिक उत्थान की शुरुआत करता है। सीता इस क्षणभंगुर संघर्ष की गवाही देने वाली अंतिम महिला हैं। सीता का जीवन असाधारण रूप से घटनापूर्ण है। उन्होंने ऐसे निर्णय लिए जो कोई भी महिला कभी नहीं ले पाती, और अपनी दृढ़ता और साहस के माध्यम से अप्रत्याशित परिणामों का सामना किया। और याद रखें कि सीता केवल सोती है, मिट्टी में एक बीज की तरह जो वसंत की गर्मी में कायाकल्प की प्रतीक्षा कर रहा है।

(साभार: www.hinduamerican.org/blog)

प्रथम योद्धा

शास्वत शक्ति का श्रोत

एक बार देवताओं और प्रजापति के मध्य एक गोष्ठी में इस विषय पर विचार विमर्श चला कि शक्ति का शाश्वत स्रोत क्या है? कैसे ज्ञात किया जाए? तब प्रजापति जी ने एक सुझाव दिया और समस्त देवी, देवताओं के नाम लिख कर उन्हीं के नाम से भाग दिया गया। सभी में शेष कुछ नही बच रहा था परंतु भगवती सीता के नाम में सीता से भाग देने पर भागफल भी सीता और शेष भी सीता ही रहा। बस उसी क्षण भगवती सीता को शाश्वत शक्ति का आधार मान लिया गया। (सीता उपनिषद में वर्णित प्रसंग)

स्त्री को शक्ति का आधार मान लेना इतना सरल नहीं है जगत को उसका प्रमाण चाहिए। तर्क किए जाते हैं कि जब सीताजी स्वयं शक्ति स्वरूपा थीं तो रावण का संहार क्यों नहीं किया? तो उनके इस तर्क का उत्तर यह है कि कोई भी शक्ति अपने आपको एक माध्यम के द्वारा क्रियान्वित करती है क्योंकि वह निरपेक्ष होती है। क्या हमारे ऋषि मुनि शक्ति संपन्न, सामर्थ्यवान नहीं थे? फिर भी विश्वामित्र ने राक्षसों के संहार के लिए श्रीराम की सहायता ली। स्वयं श्रीराम ने महाबली हनुमान जी की सहायता ली। हम भी विद्युत को सीधे उपयोग में लेकर कार्य नहीं कर सकते उसके लिए भी फ्रिज,टीवी और अन्य किसी बिजली उपकरण के माध्यम की आवश्यकता होती है। सीताजी ने भी शिव धनुष को माध्यम बना, असुरों को सचेत कर दिया था कि अब तुम्हारा विनाश निकट है। संभल जाओ, अपने पापकर्मों का त्याग कर प्रायश्चित कर लो। यहीं से भगवती सीता द्वारा रावण और अन्य असुरों के संहार की नींव रख दी जाती है।

इस बारे में एक कथा यह भी है कि जब ससुराल आने पर सीताजी ने अपनी पहली रसोई में खीर बनाकर दशरथ जी को परोसी तब उसमें घास का एक छोटा सा तिनका गिर पड़ा जिसे सीताजी ने उसे अपनी दृष्टि के तेज से नष्ट कर दिया था। उनका यह प्रताप देख दशरथ जी ने उनसे प्रण लिया था कि वह क्रोध में कभी किसी की और दृष्टि नहीं उठाएंगी। सीताजी इसीलिए तिनके की ओट से रावण से संवाद करती थी, वरना तो उनकी दृष्टि ही पर्याप्त थी रावण संहार के लिए।

'सीता उपनिषद', मध्ययुगीन युग का संस्कृत पाठ और हिंदू धर्म का एक लघु उपनिषद है। यह अथर्ववेद से जुड़ा है, और वैष्णव उपनिषदों में से एक है, जिसमें सीताजी को ब्रह्मांड की अंतिम वास्तविकता, अस्तित्व की भूमि (आध्यात्मिकता), और सभी अभिव्यक्तियों के पीछे भौतिक कारण के रूप में वर्णित किया गया है। यह उपनिषद सीताजी का परिचय मौलिक प्रकृति से करवाता है। इस उपनिषद के अनुसार सीताजी स्वयं परम सत्य, वाणी की अधिष्ठात्री वाग्देवी हैं, उन्हीं से समस्त वेद प्रवाहित हुए हैं। जैसे शिव बिना शक्ति के शव हैं वैसे ही सीताजी भी श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम बनाती हैं। जनक और मिथिला की पहचान जानकी/मैथिली ही हैं और जानकी जी एक पुत्री हैं, ये हमें नहीं भूलना चाहिए। (साभारः vskmalwa.com)

ब्रह्मवादिनी गार्गी, जिसे सीता ने माना गुरु

प्राचीन भारत में ईसापूर्व चौथी शताब्दी में जब हमारे यहां दार्शनिक विषयों का अध्ययन–मनन प्रमुखता से होने लगा था, तब कई स्त्रियों ने अपना जीवन अध्ययन और ज्ञानार्जन को समर्पित किया था। उस युग में स्त्रियां वैदिक और दर्शन आदि की शिक्षा के अतिरिक्त गणित, वैद्यक, संगीत, नृत्य और शिल्प आदि का भी अध्ययन करती थीं। क्षत्रिय स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात युद्धविद्या की भी शिक्षा ग्रहण करती थीं तथा युद्ध में भाग भी लेती थीं। कैकयी इसका महत्त उदाहरण रहीं।

गर्गवंश में वचक्नु नामक महर्षि थे, जिनकी पुत्री का नाम वाचकन्वी गार्गी था। बृहदारण्यक उपनिषद् में इनका ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ बडा ही सुन्दर शास्त्रार्थ आता है। कथा के अनुसार एक बार महाराज जनक ने श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी की परीक्षा लेने के लिए एक सभा का आयोजन किया। राजा जनक ने कहा कि जो भी श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होगा वह वह इन सब गायों को ले जा सकता है, जिनपर सोने की मुहरें लगी हैं। तब वहां उपस्थित ऋषि याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों से कहा, ''हे शिष्यों! इन गायों को हमारे आश्रम की और हांक ले चलो।'' उस सभा में ब्रह्मवादिनी गार्गी भी उपस्थित थीं। वे याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करने के लिए उठीं।

गार्गी का पहला सवाल बहुत ही सरल था। परन्तु उन्होंने अन्ततः याज्ञवल्क्य को ऐसा उलझा दिया कि वे क्रुद्ध हो गए। गार्गी ने पूछा था, ''हे ऋषिवर! जल के बारे में कहा जाता है कि हर पदार्थ इसमें घुलमिल जाता है तो यह जल किसमें जाकर मिल जाता है?'' अपने समय के उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवक्ल्य ने आराम से और ठीक ही कहा कि ''जल अन्ततः वायु में ओतप्रोत हो जाता है।'' फिर गार्गी ने पूछा कि वायु किसमें जाकर मिल जाती है? याज्ञवल्क्य का उत्तर था कि अंतरिक्ष लोक में, मगर गार्गी याज्ञवल्क्य के हर उत्तर को प्रश्न में तब्दील करती गई और इस तरह गंधर्व लोक, आदित्य लोक, चन्द्रलोक, नक्षत्र लोक, देवलोक, इन्द्रलोक, प्रजापति लोक और ब्रह्म लोक तक जा पहुंची और अन्त में गार्गी ने फिर वही सवाल पूछ लिया कि यह ब्रह्मलोक किसमें जाकर मिल जाता है? इस पर गार्गी को लगभग डांटते हुए याज्ञवक्ल्य ने कहा, ''गार्गी, इतने प्रश्न मत करो, कहीं ऐसा न हो कि इससे तुम्हारा माथा ही फट जाए।''

गार्गी का सवाल वास्तव में सृष्टि के रहस्य के बारे में था। गार्गी ने विद्वान का अहमं तुष्ट किया और चुप रही। बाद में गार्गी ने याज्ञवल्क्य से दो सवाल पूछे– ''ऋषिवर सुनो।

जिस प्रकार काशी या विदेह का राजा अपने धनुष पर की डोरी पर एक साथ दो अचूक बाणों को चढ़ाकर अपने दुश्मन पर सन्धान करता है, वैसे ही मैं आपसे दो प्रश्न पूछती हूं।''

गार्गी ने पूछा, ''स्वर्गलोक से ऊपर जो कुछ भी है और पृथ्वी से नीचे जो कुछ भी है और इन दोनों के मध्य जो कुछ भी है, और जो हो चुका है और जो अभी होना है, ये दोनों किसमें ओतप्रोत हैं?'' पहला सवाल स्पेस के बारे में है तो दूसरा टाइम के बारे में है। गार्गी ने बाण की तरह पैने इन दो सवालों के जरिए यह पूछ लिया कि सारा ब्रह्माण्ड किसके अधीन है? याज्ञवल्क्य बोले, ''एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी। यानी कोई अक्षर, अविनाशी तत्व है जिसके प्रशासन में, अनुशासन में सभी कुछ ओतप्रोत है।'' गार्गी ने पूछा कि ''यह सारा ब्रह्माण्ड किसके अधीन है?'' तो याज्ञवल्क्य का उत्तर था– ''अक्षरतत्व के!'' इस बार याज्ञवल्क्य ने अक्षरतत्व के बारे में विस्तार से समझाया। वे अन्ततः बोले, ''गार्गी इस अक्षर तत्व को जाने बिना यज्ञ और तप सब बेकार है। ब्राह्मण वही है जो इस रहस्य को जानकर ही इस लोक से विदा होता है।''

इस बार गार्गी भी मुग्ध थी। उन्होंने महाराज जनक की राजसभा में याज्ञवल्क्य को परम ब्रह्मज्ञानी मान लिया। उस महासभा को आयोजित करने का राजा जनक का एक और उद्देश्य था और वह था सीता के लिए सच्चे गुरु की तलाश करना। हालांकि सीता ने पराजय स्वीकार करने वाली गार्गी को अपना गुरु स्वीकार किया।

परिवार से विरोध कर शबरी बनी श्रमणा

शबरी भील समुदाय के शबर जाति की थी और उसका नाम श्रमणा था। उसकी कहानी तब शुरू हुई जब उसे पता चला कि उसका परिवार उससे विवाह करना चाहता है और विवाह भोज की तैयारी के लिए बड़ी संख्या में जानवरों का वध करने की योजना बना रहा है। प्रस्तावित हिंसा और क्रूरता के सख्त खिलाफ, वह आधी रात को अपने घर से भाग गई और पम्पा झील के तट पर शरण ली, जहाँ मातंग नामक एक ऋषि का आश्रम स्थित था। इस तथ्य के बावजूद कि वह आश्रम में रहने वाले लोगों द्वारा आमतौर पर प्राप्त किए जाने वाले औपचारिक आध्यात्मिक प्रशिक्षण में अनुभवहीन थी, शबरी वहां रहने वाले साधुओं की सेवा करने के लिए तरसती थी। इसलिए, उसने आस–पास के क्षेत्र में एक निवास स्थान बनाया और रातों को झील तक जाने वाले रास्ते से चुपके से काँटे और कंकड़ हटाती, और चुपचाप उनकी झोपड़ियों के बाहर जलाऊ लकड़ी के गट्ठर रख देती।

आखिर ऐसा कौन कर रहा है, यह जानने के लिए मातंग ने एक रात अपने अनुयायियों को जागते रहने और परोपकारी अपराधी को पकड़ने का निर्देश दिया। जब वह अपनी सामान्य दिनचर्या करने के लिए प्रकट हुई, तो उन्होंने उसे पकड़ लिया और अपने गुरु के चरणों में ले गए। जब मातंग ने भयभीत शबरी की ओर देखा, तो वह उसकी ईमानदारी से अभिभूत हो गए। उसकी अथाह भक्ति को पहचानते हुए, उन्होंने खुले दिल से उसकी प्रशंसा की, और औपचारिक रूप से उसे शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया, आधिकारिक तौर पर उसे आश्रम में रहने के लिए जगह दे दी।

हालांकि मातंग के अन्य शिष्य इतने समझदार नहीं थे। वे शबरी को वो सम्मान नहीं दे पाये। शबरी मातंग की सेवा के लिए इतनी समर्पित थी, कि जब नश्वर दुनिया से उनके जाने का समय आया, तो उसने उनके साथ जाने की भीख माँगी। लेकिन मातंग ने जोर देकर कहा कि उसका समय अभी नहीं आया है। उन्होंने भविष्यवाणी की, एक दिन राजकुमार राम, जो धर्म और ईश्वर का अवतार हैं, आश्रम की यात्रा करेंगे। उनके दर्शन से धन्य होने के बाद ही पृथ्वी पर उसका जीवन पूरा होगा। गुरु के चले जाने के कई साल बाद एक सुबह, जब वह झील के रास्ते को साफ करने का अपना सामान्य काम कर रही थी, तो उसने गलती से एक तपस्वी को छू लिया जो स्नान करने जा रहा था। इस घटना के बाद तपस्वी ने उसे बुरी तरह डांटा और स्नान करने चला गया। झील पर पहुँचने पर, यह निराशा तब भयावह हो गई जब उसने पाया कि झील का हमेशा साफ रहने वाला पानी खून से लाल हो गया था और उसमें कीड़े–मकौड़े भर गए थे। उसने अनुमान लगाया कि ऐसा नीची जाति की शबरी से स्पर्श के कारण ही हुआ होगा।

इस घटना की खबर दूर–दराज के साधुओं में भी फैली और फिर एक दिन श्रीराम और उनके भाई लक्ष्मण वहां पहुंच गए। राम ने वहां तपस्वियों को आश्चर्यचकित करते हुए पूछा, ''शबरी कहाँ है? वह सौभाग्यशाली महिला कहाँ है? मेरी आँखें उसे देखने के लिए प्यासी हैं।'' अपनी आध्यात्मिक अयोग्यता के बारे में आश्वस्त शबरी तब छिपी हुई थी जब राम ने आखिरकार उसे ढूंढ़ लिया। उनकी उपस्थिति से अभिभूत होकर वह दंडवत हो गई, लेकिन राम ने उसे उठाकर उसकी शर्म और दुख दूर कर दिया। अपनी आंखों से आंसू बहाते हुए उसने राम को बैठने के लिए कहा और उन्हें फल के टुकड़े परोसे, जिनमें से प्रत्येक को उसने पहले चखकर देखा कि वे मीठे हैं या नहीं। इस मलिन प्रसाद से अप्रभावित राम ने फल की मिठास का आनंद नहीं लिया, बल्कि उस अकल्पनीय भक्ति का आनंद लिया, जिससे वह प्रसाद दिया गया था। उन्होंने जो खाया, उसकी प्रशंसा की और कहा कि इससे उनकी लंबी यात्रा से हुई थकान दूर हो गई है।

इस बीच, तपस्वियों ने शबरी के स्पर्श के कारण मलिन हुए तालाब के पानी का मुद्दा उठाया। तब राम ने सुझाव दिया कि यदि शबरी के पैरों को तालाब के पानी में धोया जाए तो पानी शुद्ध और साफ हो सकता है। साधुओं में खलबली मच गई लेकिन फिर भी इसका पालन किया गया और शबरी के पैरों को तालाब के पानी में डालते ही पानी बिल्कुल साफ हो गया। तपस्वियों का अभिमान चूर–चूर हो गया।

प्रथम योद्धा

वीर जबाला : पुत्र को सत्यकाम बना दिया

प्राचीन भारत में ऐसी कई स्त्रियों के प्रसंग मिलते हैं जो अपने समय से कहीं आगे थीं। अपनी वाकपटुता और दृढ निश्चय के कारण उनकी कहानी आज भी कही जाती है। ऐसी ही एक साहसी और दृढ महिला थीं जबाला।

जबाला एक दासी थी। उसका एक पुत्र था। जब वह 10–12 साल का हुआ तो उसे उसे विद्या अध्ययन करने की उत्कट इच्छा हुई। एक दिन वह बालक गौतम ऋषि के आश्रम पहुँचा। गौतम ऋषि ने उसके पिता का नाम और गोत्र पूछा था। बालक को पिता का नाम मालूम नहीं था। ऋषि ने कहा कि वह अपनी मां से अपने पिता का नाम पूछकर आए। बालक ने जब यही सवाल अपनी मां से किया तो जबाला ने बड़ी दृढता और साफगोई से बताया कि वह कई घरों में काम करती थी। उस दौर में वह कई पुरुषों के सम्पर्क में रही। उनमें से बालक का पिता कौन था, यह उसे नहीं पता था। मां ने कहा, ''जाओ ऋषि से कह दो कि मैं अपनी मां जबाला का पुत्र हूं और इसी नाम से जाना जाऊँगा।'' बालक वापस लौटा और गौतम ऋषि को माँ का नाम बता दिया। गौतम ऋषि उसकी इस साफगोई से काफी प्रसन्न हुए थे। उन्होंने कहा कि तुम सत्य के पथ पर चलने वाले हो, अतः आज से तुम्हारा नाम सत्यकाम जाबाल हुआ। जबाला जैसी वीर मां के गर्भ से पैदा हुए उसी बालक के नाम पर आज भारत में जबलपुर है जहां उन्होंने दीर्घ अवधि तक तपस्या की थी।

सत्यकाम जाबाल को गौतम ऋषि ने कुछ गायें देकर कहा था ''इन्हें वन में चराने ले जाओ। जब ये एक सहस्त्र हो जाएँ तब लेके आना।'' सत्यकाम जाबाल वन गमन कर गया। वह गायों की खूब सेवा करने लगा। जब उनकी संख्या एक सहस्त्र हो गयी तब सत्यकाम लौटा। ऋषि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्यकाम को विद्या दान देना स्वीकार कर लिया। सत्यकाम विद्या के सभी विधाओं में पारंगत हुआ। उसे जाबालि ऋषि कहा जाने लगा।

गौतम ऋषि ने अपने आश्रम के दूसरे विद्यार्थियों को सबक सिखाते हुए कहा, ''वेदों से भी जो वस्तु प्रायः नहीं मिलती जीवन के रहस्य का उद्घाटन करने वाली वस्तु इस तरह की चर्चा से मिल जाती है। सत्यकाम के समान पुरुष जब जीवन के रहस्य को पा जाते हैं तो उनकी वाणी ही वेद बन जाती है, इसीलिए हमारे ऋषि–मुनियों ने कहा है कि वेद अनंत हैं। तुम अपने समीप बैठे हुए इस जीते–जागते वेद को भूल कर अपने रखे हुए वेदों से ना चिपके रहना।'' इसके बाद ऋषि गौतम ने सत्यकाम जाबाल से कहा, ''आओ, मैं तुम्हें ज्ञान की अंतिम दीक्षा दूं। मेरे बाद तुम ही गुरुकुल के आचार्य हो।'' इतना कहकर आचार्य ने सत्यकाम जाबाल को अंतिम दीक्षा दी और सारा आश्रम उसी को सुपुर्द कर स्वयं चले गए। बाद में यही जाबालि ऋषि के नाम से विख्यात हुए। सत्यकाम जाबाल की कथा का वर्णन छांदोग्य उपनिषद् में किया गया है। यह कथा वहीं से ली गई है। जाबालि ऋषि की विद्वता की कीर्ति चारों तरफ फैल गयी। उनसे प्रभावित हो राजा दशरथ ने उन्हें अपनी सभा में रखा था। जब राम वन गये, भरत उन्हें मनाने पहुँचे। साथ में जाबालि ऋषि भी थे। वे चर्वाक दर्शन को मानते थे। उन्होंने राम को समझाया, ''राम आपके बिना अयोध्या नगरी एक चोटी की नायिका बनकर रह गयी है। आप जब तक आओगे नहीं तब तक उस नायिका की दो चोटी नहीं बन सकती।'' ज्ञातव्य है कि शास्त्रों में दो चोटी बनाने वाली स्त्री को सुंदर कहा जाता है। जाबालि ने राम से कहा था, ''आपके पिता ने जो वचन दिया उसे भूल जाओ और अयोध्या लौट चलो। यहां कोई किसी का न बाप न किसी का बेटा है। राजा दशरथ के दिए गये वचन उनके साथ हीं चले गये। वे आपके पिता एक प्राकृतिक नियम के अंतर्गत बने थे। आप भी उसी नियम के अंतर्गत पिता बनोगे। इसमें किसी का कोई एहसान नहीं है। यह दुनिया एक सराय है। लोग आते हैं चले जाते हैं। आप इस सराय में रहते हुए सारे सुखों का उपभोग करो। वन में रहना आप जैसे राजा को शोभा नहीं देता।'' जाबालि ऋषि की इस तरह की नास्तिकता भरी बातों को सुनकर राम कुपित हो गये। राम की डांट से क्षुब्ध हो जाबालि ऋषि वापस अयोध्या नहीं गये। वे वहीं रहकर किसी कंदरा में ध्यान करने लगे। भरत राम की खड़ाऊं लेकर अयोध्या लौट गये थे।

जाबालि ऋषि के नाम पर आज जबलपुर शहर बसा हुआ है। बाद में राम पुनः जाबालि ऋषि से मिले थे। उन्होंने उनसे नास्तिकता छोड़ने का आग्रह किया था। उन्हें रेत के शिवलिंग प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया में शामिल किया था, लेकिन जीवन पर्यंत जाबालि ऋषि चर्वाक दर्शन को मानते रहे थे।

रामायण की असली नायिका कैकेयी

कई बार मजबूती से यह तर्क दिया जाता है कि कैकेयी रामायण में केंद्रीय साजिशकर्ता और इसे आगे तक चलाए रखने वाला किरदार है। वह राजा दशरथ की तीन पत्नियों में से एक है जिसने न सिर्फ अयोध्या के उत्तराधिकारी के रूप में राज्याभिषेक की पूर्व संध्या पर अपने सौतेले बेटे राम को गद्दी से हटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई साथ ही उन्हें चौदह साल के लिए वनवास पर भी भिजवाया। कैकेयी को एक दुष्ट के रूप में देखा गया और उसके अपने बेटे, जिसे वह राजनीतिक उत्तराधिकारी के रूप में पेश कर रही थी, सहित सभी ने कैकेयी की निंदा की।

दूसरी ओर, अयोध्याकांड के अंत में पश्चाताप करने वाली कैकेयी को वापस दरकिनार कर दिया जाता है। हालांकि वह यादों में एक कट्टरपंथी आक्रामक और ऐसी महिला के रूप में जीवित रहती है जिसकी कामुकता प्राकृतिक पितृवंशीय और पितृसत्तात्मक परिवार को नष्ट कर देती है। कहानी में कैकेयी अपने पति दशरथ से जो कुछ भी मांगती है, उसे उसके इस

साकेत : कैकेयी का पश्चाताप

– मैथिलीशरण गुप्त

"यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को।"
चौंके सब सुनकर अटल कैकेयी स्वर को।
बैठी थी अचल तदापि असंख्यतरंगा,
वह सिन्हनी अब थी हहा गोमुखी गंगा।
"हाँ, जनकर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुनलें तुमने स्वयम अभी यह माना।
यह सच है तो घर लौट चलो तुम भैय्या,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैय्या।"
"यदि मैं उकसाई गयी भरत से होऊं,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र मैं खोऊँ।
ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार, उसे सब चुन लो।
करके पहाड़ सा पाप मौन रह जाऊं?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊं?"
उल्का–सी रानी दिशा दीप्त करती थी,
सबमे भय, विस्मय और खेद भरती थी।
"क्या कर सकती थी मरी मंथरा दासी,
मेरा मन ही रह सका ना निज विश्वासी।
जल पंजर–गत अब अधीर, अभागे,
ये ज्वलित भाव थे स्वयं तुझे में जागे।
थूके, मुझपर त्रैलोक्य, भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे क्यूँ चूके?
छीने न मातृपद भरत का मुझसे,
हे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे?
युग योग तक चलती रहे कठोर कहानी–
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म–जन्म में सुने जीव यह मेरा–
'धिक्कार, उसे था महा स्वार्थ ने घेरा'।"
"सह सकती हूँ चिरनरक, सुनें सुविचारी,
पर मुझे स्वर्ग की दया, दंड से भारी।
लेकर अपना यह कुलिश कठोर कलेजा,
मैंने इसके ही लिए तुम्हें नरक भेजा।

(कविता का एक अंश)

बहुविवाह का दंश

अधिकार से इनकार नहीं किया जाता और जा सकता है क्योंकि जब उसने अपने पति की जान बचाई थी तब उसे दो वरदान देने का वादा किया गया था।

''जब देवताओं और असुरों का युद्ध हो रहा था तो तुम्हारा पति देवताओं के राजा की सहायता करने के लिए राजसी सिद्ध पुरुषों के साथ गया और वह तुम्हें साथ ले गया, जहां वह घायल होकर बेसुध हो गया था, तब तुमने उसे उस युद्ध से सुरक्षित बाहर निकाला था। जब तुम्हारा पति शस्त्रों से घायल हुआ तब तुमने उसका उद्धार किया ... और इसलिए अपनी कृतज्ञता में उन्होंने तुम्हें दो वरदान दिए।'' (अयोध्याकांड, 9.9–13)

एक कुलीन महिला जो अपनी रसोई और शयनकक्ष में मिलने वाले आराम की ही आदि हो, दशरथ को एक महायुद्ध से कैसे निकाल सकती है? इसका जवाब शायद कैकेयी के नाम में ही निहित है जो कि केकया नाम के स्थान पर रखा गया था। वाल्मीकि की रामायण में अयोध्या के चरम उत्तर–पश्चिम में पांच. ालदेश और कुरु जंगलों (अयोध्याकांड, 62.10) से परे और बहलि. का के इलाके से आगे केकया का पता बताया गया है जहां तक यात्रा करने में भरत को लगभग सात रातें लगती थीं। प्रख्यात संस्कृत विद्वान और पुरातत्वविद् एचडी संकलिया बताते हैं कि केकया का जिक्र शतपथ ब्राह्मण (X-6-1–2) और छांदोग्य उपनिषद (v.4) में किया गया है और बाद में पाणिनी (अष्टाध्यायी, 7.3.2) में इसका उल्लेख किया गया है। केकया का प्राचीन समाज योद्धा महिलाओं से भरा हुआ था जो एक कीमत अदा करने पर शादी करती थीं।

अयोध्याकांड, 99.5 में धर्म के पालन करने वाले राम भरत को बताते हैं कि मेरे प्रिय भाई बहुत पहले जब हमारे पिता तुम्हारी मां से शादी करने वाले थे तब उन्होंने तुम्हारे नाना को वधू–मूल्य शपथ (दुल्हन खरीदन की एक कीमत) दी थी। और वह मूल्य तुम्हें अयोध्या का राजा बनाने का वचन था जो हमारे पिता ने तुम्हारे नाना को दिया था।

विवाह जो किसी व्यक्ति के सामाजिक–यौन जीवन और अधिकारों की व्यवस्था है, महाकाव्य में भी स्पष्ट रूप से एक समान रूप से चलने वाली संस्था नहीं थी। दुल्हन की कीमत देने की प्रथा जिसे अक्सर असुर विवाह के रूप में जाना जाता है प्राचीन भारत में प्रचलित थी और महाभारत में माद्री का विवाह भी इसका एक उदाहरण है। इसके अलावा महिलाओं के विवाह की शर्तों को निर्धारित करने के अधिकार का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। उदाहरण के लिए शकुंतला पौरवों के राजा दुष्यंत से कहती है, ''मेरा पुत्र जब पैदा होगा वही आपका उत्तराधिकारी और राजा बनेगा... यदि ऐसी शर्त पूरी हो सकती है तो आप मेरे साथ रह सकते हैं'' (आदिपर्वन, 67)। बाद में कालिदास का नाटक अभिज्ञान शाकुंतलम महिला अधिकारों की इस धारणा को बदल देता है क्योंकि यह शकुंतला को कम मुखर बनाता है और इसमें राजा द्वारा अपने बेटे को उत्तराधिकारी बनाने के वादे को व्यक्तिगत या राजनीतिक के बजाय एक अभिशाप और धुंधली स्मृति के रूप में दर्शाया गया है।

कैकेयी के पास अपने बेटे के लिए अयोध्या के सिंहासन की मांग करने के प्रथागत (दुल्हन की कीमत) और संविदात्मक (वरदान) दोनों अधिकार थे। कैकेयी को केवल बुरी महिला के रूप में पहचाना जाना विवाह संस्था के भीतर महिलाओं की अनेक भूमिकाओं और अधिकारों में नियमित गिरावट का प्रमाण है। गौरतलब है कि कैकेयी के इतना रोने और कोसने के बावजूद अयोध्या के लोग भरत को अपना राजा मानने से इनकार नहीं कर रहे थे, ''हे प्रतापी राजकुमार आपको आज ही हमारा राजा बनना चाहिए और जैसे ही वे भरत के पास पहुंचे प्रजा ने उसी तरह नमस्कार किया जिस तरह वे दशरथ को करते थे।'' (अयोध्याकांड, 73.1 और 75.10)। भरत की अनुपस्थिति में राम का राज्याभिषेक करना दशरथ का जल्दबाजी में लिया गया निर्णय था, जो तब लिया गया था जब भरत शत्रुघन के साथ अपने नाना और मामा से मिलने जाता है। यह तब और संदेहास्पद हो जाता है जब कैकेयी को सूचित या आमंत्रित किए बिना किया जाता है।

रामायण के ये विवरण दशरथ का कैकेयी और केकया से किए अपने वादे से मुकरने को उजागर करते हैं। उदाहरण के तौर पर यह महाकाव्य वंशवाद और उसे मजबूत करने वाली प्रथा, जिसमें सबसे बड़े पुत्र को राज्य विरासत में मिलता है, को सामने लाता है। पितृवंशीय रीति–रिवाजों से भरी इस दुनिया में कैकेयी ने जो किया वह समस्या पैदा करने वाला था। इस सबको यौन संबंधो में ढ़ालकर देखना पितृसत्ता द्वारा चलने वाले समाज के भीतर महिला सामर्थ्य के अवमूल्यन का संकेत देता है जो जाति और वर्ग पदानुक्रम के साथ मिलकर काम करता है। कैकेयी की वैध मांग को निंदनीय ठहराना भी बहुविवाह संबंधों में फंसी महिलाओं की पीड़ा और चिंताओं को समझना और मुश्किल कर देता है। राजसी परिवारों में बहुविवाह, जहां विवाह भी राजनीतिक गठबंधन होते थे परस्पर विरोधी पक्षों का झगड़ा सुलझाने का एक तरीका होता था। लेकिन इस संदर्भ में महिलाओं की मांगें को महिलाओं के बीच छोटे–मोटे झगड़े के रूप में समझकर खारिज कर दिया जाता था। बहुविवाह संबंधों में फंसी महिला की परेशानियों और एक मां के अधिकार को रामायण में किनारे पर धकेल दिया गया है और सिर्फ एक पुरूष का अपने पिता या भाई के प्रति भक्ति का गुणगान किया है। अपने अधिकारों का दावा करने वाली कैकेयी को एक बुरी मां के रूप में दिखाया गया है जिसे उसके खुद के बेटे भरत ने भी अस्वीकार कर दिया है क्योंकि उसने कौशल्या के सामने राम के प्रति वफादारी की कसम खाई है।

(साभार: caravanmagazine.in)

सत्यवती

महाभारत का एक बहुस्तरीय चरित्र

सत्यवती उन लोगों में से एक हैं जिन्होंने महाकाव्य महाभारत की नींव रखी। सत्यवती राजा शांतनु की दूसरी पत्नी थीं और हस्तिनापुर की रानी थीं। सत्यवती की कहानी अप्सरा अद्रिका से शुरू होती है, जिसे एक ऋषि ने मछली बनने का श्राप दिया था। इस मछली अद्रिका को दाशराज नामक एक मछुआरे ने पकड़ा था। जब वह उसे घर लेकर आया, तो उसके पेट से उसे दो बच्चे मिले। एक लड़का जिसका नाम मत्स्य था और एक लड़की जिसका नाम मत्स्य गंधा (मछली की तरह गंध वाली) थी। दाशराज फिर दोनों बच्चों को राजा उपरिचरा वसु के पास ले गए, जो उनके जैविक पिता थे। हालाँकि, राजा ने लड़के मत्स्य को ले लिया लेकिन बेटी को दशराज को दे दिया।

दाशराज ने लड़की को अपनी बेटी जैसा ही पाला और उसके काले रंग के कारण उसका नाम "काली" रखा, जिसे बाद में सत्यवती के नाम से जाना गया। वह एक मछुआरा और नाविक था। सत्यवती अपने पालक पिता के काम में मदद करती थी। एक दिन, ऋषि पराशर नदी पार करना चाहते थे, और मत्स्य गंधा ने उन्हें अपनी नाव में ले लिया। एक संस्करण के अनुसार पराशर खगोल विज्ञान में बहुत अच्छे थे और जब उन्होंने आकाश में खगोलीय पिंडों की व्यवस्था को देखा, तो उन्हें एहसास हुआ कि इस समय में पैदा होने वाले बच्चे का जीवन बहुत अच्छा होगा, इसलिए उन्होंने मत्स्यगंधा से अपने बच्चे को जन्म देने के लिए कहा। ऋषि पराशर ने मत्स्य गंधा (क्योंकि उसने गंध से छुटकारा पाने का वरदान मांगा था) को मछली की दुर्गंध के बदले कस्तूरी की सुगंध के साथ–साथ चिरयौवन प्रदान किया। यह सुगंध एक "योजन" दूर से भी सूँघी जा सकती थी, इसलिए अब वह "योजनगंधा" बन गई। सत्यवती ने उसी दिन एक बेटे को जन्म दिया, जो तुरंत बड़ा हो गया और अपने पिता के साथ चला गया। इस बेटे का नाम 'कृष्ण द्वैपायन' रखा गया (जो एक द्वीप पर पैदा हुआ था और जिसका रंग काला था) और बाद में वह 'वेद व्यास' नामक एक प्रसिद्ध ऋषि बन गया। जाने से पहले, उसने अपनी माँ को आश्वासन दिया कि जब भी उसे उसकी जरूरत होगी, वह आ जाएगा।

कई सालों बाद, हस्तिनापुर के राजा शांतनु सत्यवती से मिले और उनकी खूबसूरती पर मोहित हो गए। किंवदंती है कि नदी के किनारे घूमते समय उन्हें इस तेज आकर्षक सुगंध का अहसास हुआ और इसके स्रोत की खोज करते समय उन्हें योजनगंधा मिली और वे अचानक उससे प्यार करने लगे। शांतनु, जिन्हें गंगा से अपनी पहली शादी से पहले ही एक बेटा था, ने सत्यवती से शादी के लिए पूछा। हालाँकि, उसके पिता दशराज ने एक शर्त रखी। दशराज ने शांतनु से माँग की कि सत्यवती उनकी रानी बनेगी और उसकी संतान को हस्तिनापुर की गद्दी विरासत में मिलेगी। शांतनु अपने बेटे 'देवव्रत' के साथ अन्याय बर्दाश्त नहीं कर सके और इसलिए टूटे दिल और निराशा के साथ अपने महल में वापस आ गए।

अपने पिता की व्यथा और निराशा को प्रतिदिन देखते हुए एक दिन देवव्रत ने उनसे इसका कारण पूछा। पहले तो बताने में हिचकिचाहट हुई, पर अंत में शांतनु ने कारण बता दिया। देवव्रत तुरन्त दाशराज के पास गए। दाशराज ने उनसे भी विवाह के लिए वही शर्त रखी। देवव्रत के लिए अपने पिता की खुशी सर्वोपरि थी, बिना कुछ सोचे–समझे उन्होंने राजगद्दी छोड़ने की सहमति दे दी। हालाँकि, दाशराज की आशंका कम नहीं हुई। उन्हें संदेह था कि भले ही देवव्रत ने राजगद्दी छोड़ दी हो, लेकिन उनकी होने वाली संतानें राजगद्दी के लिए खतरा बन सकती हैं और भविष्य में परेशानी पैदा कर सकती हैं। यह सुनकर देवव्रत ने अविवाहित रहने की शपथ ली। इस शपथ के कारण, देवव्रत को 'भीष्म' कहा जाता है।

इस विवाह से शांतनु को दो पुत्र हुए– चित्रांगद और विचित्रवीर्य। शांतनु की मृत्यु के बाद भीष्म ने चित्रांगद को राजा बनाया। चित्रांगद एक बहादुर राजा थे जिन्होंने कई युद्ध लड़े और जीते। लेकिन अपने नाम के एक गंधर्व के साथ युद्ध उनकी अंतिम लड़ाई साबित हुई। गंधर्व ने उन्हें मार डाला। उनके निधन से हस्तिनापुर का सिंहासन खाली हो गया। तब उनके छोटे भाई विचित्रवीर्य ने सत्यवती के मार्गदर्शन में भीष्म के साथ सिंहासन संभाला। बाद में जब वे बड़े हुए, विचित्रवीर्य ने काशी साम्राज्य की दो राजकुमारियों– अंबालिका और अंबिका से विवाह किया। अपने बड़े बेटे सत्यवती की असामयिक मृत्यु से हिल गए, आखिरकार सिंहासन के उत्तराधिकारी की आशा की एक नई किरण जगी। लेकिन भाग्य को कुछ और ही मंजूर था। विचित्रवीर्य भी क्षय रोग से पीड़ित होकर उत्तराधिकारीहीन मर गए। इससे हस्तिनापुर भारी संकट में आ गया। कोई पुरुष वंश नहीं बचा था जो कोई उत्तराधिकारी पैदा कर सके।

सत्यवती ने क्रोधित होकर भीष्म से कहा कि वे अपने छोटे भाई की विधवा पत्नियों से विवाह कर लें, राजगद्दी संभालें और उत्तराधिकारी पैदा करें। राजगद्दी की शपथ और कर्तव्य से बंधे भीष्म ने विनम्रतापूर्वक उसे मना कर दिया। असहाय सत्यवती ने तब इस समस्या को हल करने के लिए अपने बेटे वेद व्यास को बुलाया। फिर उसने विधवाओं के साथ उत्तराधिकारी पैदा करने के लिए नियोग का रास्ता चुना। वेद व्यास मुश्किल से सहमत हुए। बड़ी मुश्किल से और बहुत अनुनय–विनय के बाद वह अपनी बहुओं की सहमति प्राप्त करने में भी सफल रही।

सत्यवती एक बहुत ही बहुस्तरीय चरित्र है। उसके जीवन की हर परिस्थिति एक नई परत को उजागर करती है। मछली जैसी दुर्गंध के कारण पिता द्वारा त्याग दी गई, राजा की बेटी होने के बाद भी उसका पालन–पोषण एक साधारण मछुआरे ने किया। युवावस्था तक उसे इस घृणित गंध के साथ जीना पड़ा। पराशर से मुलाकात एक महत्वपूर्ण मोड़ था। अनिच्छा से ही सही, इस दुर्गंध से छुटकारा पाने के लिए उसने पराशर की मांग मान ली। एक ओर यह उसके अवसरवादी स्वभाव को दर्शाता है, दूसरी ओर यह भी लगता है कि एक छोटी सी मासूम बच्ची के लिए अपने पिता द्वारा त्याग दिया जाना कितना असहनीय रहा होगा, एक किशोर के लिए सभी की घृणा को सहन करना कितना पीड़ादायक रहा होगा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वह इस दुर्गंध से छुटकारा पाने के लिए इतनी बेचैन थी।

मछली जैसी दुर्गंध के कारण पिता द्वारा त्याग दी गई, राजा की बेटी होने के बाद भी उसका पालन–पोषण एक साधारण मछुआरे ने किया। युवावस्था तक उसे इस घृणित गंध के साथ जीना पड़ा। पराशर से मुलाकात एक महत्वपूर्ण मोड़ था। अनिच्छा से ही सही, इस दुर्गंध से छुटकारा पाने के लिए उसने पराशर की मांग मान ली।

शांतनु ने एक और महत्वपूर्ण बदलाव किया। यहाँ उनके पिता दाशराज की अहम भूमिका थी। सतही तौर पर देखा जाए तो शांतनु के साथ उनके सौदे को उचित नहीं माना जा सकता। लेकिन फिर एक पिता के नजरिए से विश्लेषण करने पर उन्होंने अपनी पालक बेटी के साथ हुए अन्याय को देखा, वह एक राजकुमारी थी लेकिन संघर्ष और परेशानी से भरी जिंदगी जी रही थी। शायद वह बस उसका भविष्य सुरक्षित करना चाहता था और उसे एक आरामदायक जीवन देना चाहता था जिसकी वह हकदार थी। हालांकि परिस्थितियों को अपने पक्ष में ढालने के लिए इतना प्रयास करने के बावजूद, सत्यवती के बेटे बिना उत्तराधिकार के मर गए। एक वारिस पाने की चाहत में, महत्वाकांक्षी सत्यवती ने भाग्य से कड़ा संघर्ष किया। उसका अंतिम लक्ष्य शांतनु के वंश को जीवित रखना था, जिसमें वह विफल रही। फिर भी सत्यवती अंत तक अपनी बहुओं के साथ रही और कभी उनका साथ नहीं छोड़ा।

शकुन्तला

जिसने सम्मान खोया मगर स्वाभिमान नहीं

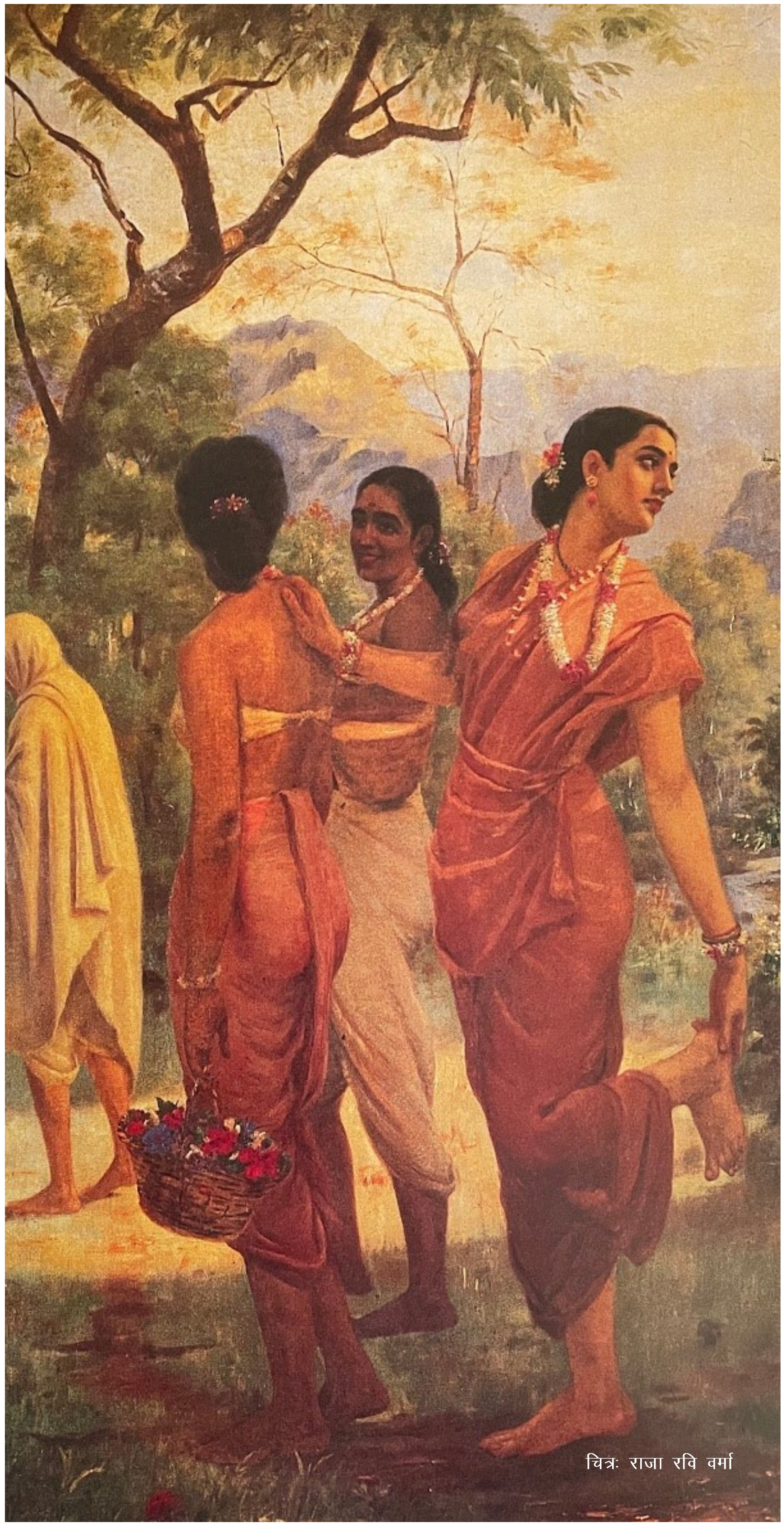

चित्र: राजा रवि वर्मा

संस्कृत साहित्य जगत के आदर्श कवि कालिदास के नाटक अभिज्ञान शाकुंतलम को पूरी दुनिया में सराहा जाता है। शकुन्तला का जिक्र महाभारत में आया है। हालांकि महाभारत और कवि कालिदास की रचना दोनों के कथानक में व्यापक अंतर है।

महाभारत में शकुंतला को एक मजबूत, आत्मविश्वासी और स्वतंत्र महिला के रूप में दर्शाया गया है जो खुद की रक्षा करने में सक्षम है। वह इतनी निडर है कि वह शादी के शाश्वत बंधन में बंधने से पहले ही अपने और अपने बच्चे के लिए सुरक्षित भविष्य की मांग करती है। अपने दरबार में शकुंतला के प्रति दुष्यंत का सनकी रवैया साबित करता है कि वह एक स्वार्थी व्यक्ति था। शकुंतला ऋषि विश्वामित्र और मेनका की पुत्री थी। वह ऋषि कण्व के आश्रम में रहती थी।

कालिदास अपने महाकाव्य में उसे जन्मजात शुद्धता, सौंदर्य, शालीनता, भारतीय नारीत्व, धैर्य और त्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। शकुंतला न केवल सुंदर थी, बल्कि वह कौशल और तर्क–वितर्क में भी निपुण थी। वह शक्ति और धैर्य की भी प्रतीक थी। उसके तर्क–वितर्क का आनंद तब लिया जा सकता है, जब वह राजा दुष्यंत के दरबार में थी। वह दुष्यंत को बताती है कि वह उसकी पत्नी है। वह गर्भवती है। यद्यपि दुष्यंत उसे पहचान नहीं पाता, लेकिन वह अपने तर्क, वाक्कौशल और भावनात्मक अपील के माध्यम से उसे पीड़ादायक और चिंतनशील मनोदशा में डाल देती है। यद्यपि दुष्यंत उसे नहीं पहचान पाता, लेकिन वह बिल्कुल भी क्रोधित नहीं होती। वह केवल स्तब्ध रह जाती है। वह एक भी कठोर शब्द नहीं बोलती।

महाभारत

कथा के अनुसार, एक दिन राजा दुष्यंत अपने महल से जगंल में शिकार खेलने के लिए निकले। शिकार करते–करते वह जगंल में बहुत दूर निकल गए। तब उन्होंने कण्व के आश्रम में ही रात बिताने का विचार किया। उन दिनों कण्व आश्रम में नहीं थे तो उनका स्वागत सत्कार उनकी पुत्री शकुन्तला ने ही किया। उसकी सुंद. रता पर राजा मोहित हो गए और उसके सामने गंधर्व विवाह का प्रस्ताव रखा। शकुंतला ने राजा दुष्यंत के विवाह के प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार कर लिया। दोनों आश्रम में रहने वाले अन्य ऋषियों से सलाह ले कर गंधर्व विवाह करके विवाह बंधन में बंध गए। राजा दुष्यंत ने अपने नामांकित (नाम लिखी) अँगुठी शकुंतला को निशानी के तौर पर पहना दी। (गंधर्व विवाह में वर–वधु को निशानी के रुप मे एक दूसरे को कुछ भेट देनी पड़ती थी)। कुछ दिन वहाँ रुक कर राजा दुष्यंत अपने नगर को लौट गए। जब वे अपने नगर के लिए निकलने लगे तब उन्होने शकुंतला से कहा कि वे नगर पहुंच कर सैनिक भेजेंगे तुम्हें संग ले जाने के लिए। जब राजा दुष्यंत वापस अपने नगर को लौट गए तो शकुंतला दिन भर उनकी याद में ही खोई रहती। खाने–पीने की सुध भी भूल गई थी। दिन कब हुआ कब रात हुई कोई सुध ना रहती। कुछ समय बाद उसने राजा दुष्यंत के पुत्र सर्वदमन को जन्म दिया। बालक की अवस्था बारह वर्ष की हो जाने के बाद कण्व ऋषि उसे लेकर राजा की सभा में पहुंचे।

सभा में शकुंतला ने राजा को बड़े गर्व से बताया कि यह पुत्र उनका अपना पुत्र है और उन्होंने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने का वचन दिया था। तो अब उस वचन को पूरा करने का समय आ गया है। लेकिन राजा दुष्यंत अपनी पत्नी और बच्चे को पहचानने से साफ इंकार कर देता है। तब क्रोध और अमर्ष से शकुंतला की आंखें लाल हो गईं। ओष्ठ फड़कने लगे। वो कहती है, ''मैं स्वयं आपके पास आयी हूँ, ऐसा समझकर मुझ पतिव्रता पत्नी का तिरस्कार न कीजिये। मैं आपके द्वारा आदर पाने योग्य हूँ और स्वयं आपके निकट आयी हुयी आप ही की पत्नी हूँ तथापि आप मेरा आदर नहीं करते हैं। आप किसलिये नीच पुरुष की भाँति सभा में मुझे अपमानित कर रहे हैं? यदि मेरे उचित याचना करने पर भी आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो आज आपके सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे (यदि मे याचमानाया वचनं न करिष्यसि, दुष्यन्त शतधा मूर्धा ततस्तेऽद्य स्फुटिष्यति)। तत्पश्चात् वह भार्या के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुये कहती है कि पति ही पत्नी के भीतर गर्भ रूप से प्रवेश करके पुत्र रूप में जन्म लेता है। यही जाया का जायात्व है जिसे पुराणवेत्ता विद्वान् जानते हैं। वही भार्या है जो गृहकार्यों में दक्ष हो। वही भार्या है जो संतानवती हो। वही भार्या है जो अपने पति को प्राणों के समान प्रिय मानती हो और वही भार्या है जो पतिव्रता हो। भार्या पुरुष का आधा अंग है। भार्या उसका सबके उत्तम मित्र है। भार्या धर्म, अर्थ और काम का मूल है और संसार–सागर से तरने की इच्छा वाले पुरुष के लिये भार्या ही प्रमुख साधन है। पतिव्रता स्त्री पति के मरने पर उसका अनुसरण करती है तथा पति से पहले मरने पर उसकी परलोक में प्रतीक्षा करती है। इसीलिये सुशीला स्त्री का पाणिग्रहण करना सभी के लिये अभीष्ट होता है। क्योंकि पति अपनी पतिव्रता स्त्री को इहलोक में तो पाता ही है, परलोक में भी प्राप्त करता है। रति, प्रीति तथा धर्म पत्नी के ही अधीन हैं ऐसा सोचकर पति को चाहिये कि वह कुपित होने पर भी पत्नी के साथ कोई अप्रिय व्यवहार न करे।

आदिपर्व, महाभारत में कहा गया है कि राजा के हृदय में पुत्र के प्रति प्रेमभाव जाग्रत करने की इच्छा से वह कहती हैं, ''आपका यह पुत्र स्वयं आपके पास आया है और प्रेमपूर्ण तिरछी चितवन से आपकी ओर देखता हुआ आपकी गोद में बैठने के लिये इच्छुक है। फिर आप किसलिये इसका तिरस्कार करते हैं। चींटियाँ भी अपने अण्डों का पालन ही करती हैं, उन्हें फोड़ती नहीं फिर आप धर्मज्ञ होकर भी अपने पुत्र का भरण–पोषण क्यों नहीं करते? संसार में पुत्र के स्पर्श से बढ़कर सुखदायक स्पर्श और किसी का नहीं है।'' तत्पश्चात् वह अपने जन्म की कथा सुनाती है और स्वयं का और पुत्र का परित्याग न करने के लिये कहती है। परन्तु दुष्यन्त उसकी किसी बात पर विश्वास नहीं करता और उसे अपमानित कर वहाँ से जाने के लिये कहता है। यह सुनकर शकुन्तला कहती है, ''आप दूसरों के सरसों बराबर दोष को तो देखते हैं किन्तु अपने बैल के समान बड़े–बड़े दोषों को देखकर भी नहीं देखते। नरेश्वर! मेरे प्रभाव को देख लो। मैं इन्द्र, कुबेर, यम और वरुण सभी के लोकों में निरन्तर आने–जाने की शक्ति रखती हूँ। पितरों ने पुत्र को कुल और वंश की प्रतिष्ठा बताया है। अतः पुत्र सब धर्मों में उत्तम है इसीलिये पुत्र का त्याग नहीं करना चाहिये।'' तत्पश्चात् वह सत्य की महिमा बताते हुये कहती है कि सत्य के समान कोई धर्म नहीं है, सत्य से उत्तम कुछ भी नहीं है और झूठ से बढ़कर तीव्रतर पाप इस जगत् में दूसरा कोई नहीं है। सत्य परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है। सत्य सबसे बड़ा नियम है।'' वह कहती है कि उनके जैसे व्यक्ति के साथ रहना मेरे लिये उचित नहीं है और वह स्वयं उनका परित्याग करती है। शकुन्तला की बातों से दुष्यन्त को अपने किए पर लाज आती है और वह शकुन्तला व अपने पुत्र को स्वीकार करता है।

एक संपूर्ण नारी थी द्रौपदी

द्रौपदी, यह नाम लेते या सुनते ही, एक अभिमानिनी, स्वाभिमानिनी, संघर्षशील, और दृढ़ प्रतिज्ञ–सा बिम्ब मनःपटल पर उभरता है। कृष्णा, जिसका सखा–लीला बिहारी कृष्ण, पति–स्वयं धर्म संस्थापक धर्मराज युधिष्ठिर, सर्वशक्तिमान और सर्वश्रेष्ठ गदाधर भीम, सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन, सर्वसुन्दर अश्विनसंतति नकुल–सहदेव, सास–नितिशाली पृथा, पितृव्य–मृत्युंजय पितामह भीष्म, स्वयं पांचाल राजकुमारी, कुरुराजवधु और इन्द्रप्रस्थ साम्राज्ञी होने के पश्चात् भी, समस्त जीवन दुखों और संघर्षों की आत्मसाती। संतानें होते हुए भी, निःसन्तान–जैसी पीड़ा। सर्वसुन्दरी, सर्वसुखयोगी होकर भी, निःश्रृंगार, कष्टभोगी जीवन। एक ऐसी स्त्री के चित्र पर दृष्टिपात होता है, जो पाँच पुरुषों में विभाजित होने के पश्चात् भी, अक्षतयौवना, सती और समभाव की प्रेमस्थली है।

समस्त महाभारत के नायक यदि कृष्ण हैं, तो नायिका द्रौपदी है। यहाँ एक विरोधाभास हो सकता है, कि नायक और नायिका तो वे ही होते हैं, जिनमें परस्पर प्रेम हो, और उसकी परिणति दाम्पत्य, फिर कृष्ण और कृष्णा नायक–नायिका कैसे हो सकते हैं? तो यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात है कि समस्त महाभारत में, द्रौपदी के सखा कृष्ण ही थे, जो आगे आए और उसके स्वयंवर में परास्त और क्रुद्ध राजाओं एवं पाण्डवों

चित्र: राजा रवि वर्मा

के मध्य युद्धोन्माद का अन्त करवाया। उसने अकेले ही इस सखा कृष्ण की सखि होकर इस अनोखे सम्बन्ध का आनन्द लिया। केवल वही थी इस पूरे महाकाव्य में जिसके पास कृष्ण को झिड़कने का अधिकार प्राप्त था। समस्त कुरु सभा में, जब उसे निर्वस्त्र किया जा रहा था, तब उसने पूर्णाधिकार से कृष्ण को स्वरक्षा हेतु पुक. ारा था और कहा था, "मेरा कोई पति नहीं, न ही पुत्र, न भाई, न पिता और यहाँ तक कि हे मधुसूदन! तुम भी मेरे नहीं हो। पश्चात् इसके भी तुम चार कारणों से मेरी रक्षा करने के लिए बाध्य हो। मैं तुमसे संबन्धित हूँ, मैं प्रसिद्ध हूँ, मैं तुम्हारी सखि हूँ, और तुम सबके पालक हो।'' इन वाक्यों से उसने अपने सखा को न मात्र प्रेरित किया, वरन उसने अपना भी महत्व बताया, सखा को उसके कर्तव्य, अधिकार और धर्म का भी स्मरण कराया।

अर्थात् द्रौपदी निःसन्देह बड़ी कुशाग्र बुद्धि थी। अपने–आप में पूर्ण एकरूपा, वह कुरुवंश के बड़े और पूजनीय लोगों के पक्षपात पूर्ण अत्याचार के लिये झिड़कने से भी हिचकी नहीं। द्रौपदी समस्त प्रताड़ित नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। उस सभा में विद्वानों के मध्य एक प्रश्न–गागर के रूप में थी, जिसने सबको निरुत्तर कर दिया था। द्रौपदी अपने अधिकारों की लड़ाई का प्रतीक है, और साथ ही चिह्न है प्रतिशोध का। आचार्य चाणक्य ने भी सम्भवतः प्रतिशोध के खुले केश का विचार द्रौपदी से ही पाया होगा, क्योंकि खुले केश जब बार–बार सामने दिखते होंगे, तो अपना अपमान, और अपमान के प्रतिशोध के लिए निश्चय और भी दृढ़ होता होगा।

द्रौपदी एक आत्मविश्वासी और साहसी स्त्री थी, जिसे यह पता था कि जयद्रथ हो, या कीचक यदि उसका अपमान करेंगे, तो वे अपने जीवन से हाथ धो बैठेंगे, और यही हुआ भी। जयद्रथ को अपमान के बदले युधिष्ठिर का दास बनना पड़ा, तो वहीं कीचक को भीमसेन के हाथों मरना पड़ा। द्रौपदी ऐसी स्त्री थी, जो स्त्री की पीड़ा को भी समझती थी, यही कारण था कि जब समस्त पाण्डव पांचाली के अपमान के बदले जयद्रथ के लिए युधिष्ठिर से मृत्युदण्ड माँग रहे थे, तभी द्रौपदी ने अपनी ननद अर्थात् जयद्रथ की पत्नी दुशाला के सुहाग की रक्षा करते हुए, उसे अभय दिया। द्रौपदी अयोनिजा (जिसका जन्म स्त्री के गर्भ से न हुआ हो) थी। वह दिव्यजन्मा याज्ञसेनी थी। साँवला वर्ण होने के कारण उसे कृष्णा कहा गया। वास्तव में द्रौपदी का जन्म भी एक उद्देश्य पूर्ति के लिए हुआ, और निःसन्देह उसके पिता अपने उद्देश्य में सफल भी हुए। अर्थात् द्रौपदी लक्ष्यसाधिका भी है। सास द्वारा पञ्चगामिनी बनाए जाने पर उसने तनिक भी विरोध नहीं किया, इसका तात्पर्य है कि द्रौपदी सुशील और आज्ञाकारिणी थी। अपने क्रोध के बल पर द्रौपदी युधिष्ठिर द्वारा खोए हुए राज्य, समस्त पतियों के शस्त्र, उनका सम्मान भी वापस प्राप्त कर लेती है।

यदि समग्र में कहा जाय, तो द्रौपदी का चरित्र अनोखा है। समूचे संसार के इतिहास में उस जैसी दूसरी कोई स्त्री नहीं हुई। महाभारत में द्रौपदी के साथ जितना अन्याय होता दिखता है, उतना अन्याय इस महाकथा में किसी अन्य स्त्री के साथ नहीं हुआ। द्रौपदी संपूर्ण नारी थी। वह कार्यकुशल थी, और लोकव्यवहार के साथ घर–गृहस्थी में भी पारंगत, परन्तु द्रौपदी जैसी असाधारण नारी के बीच भी एक साधारण नारी छिपी थी।

(साभारः rangdoot.blogspot.com)

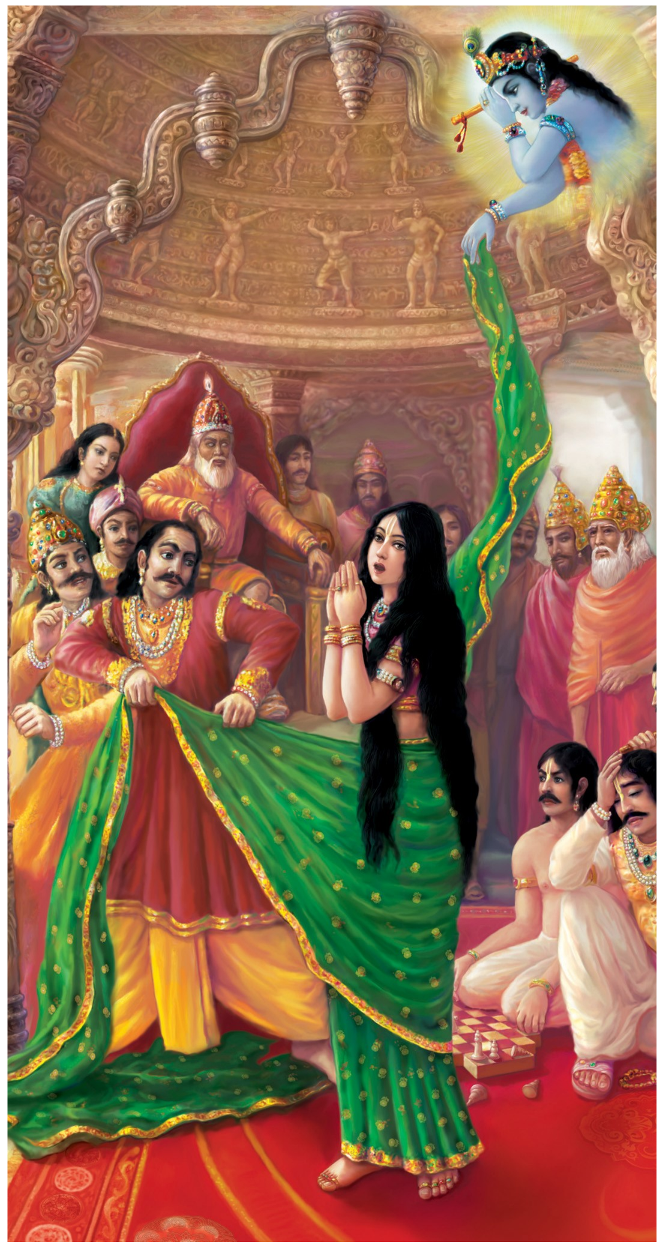

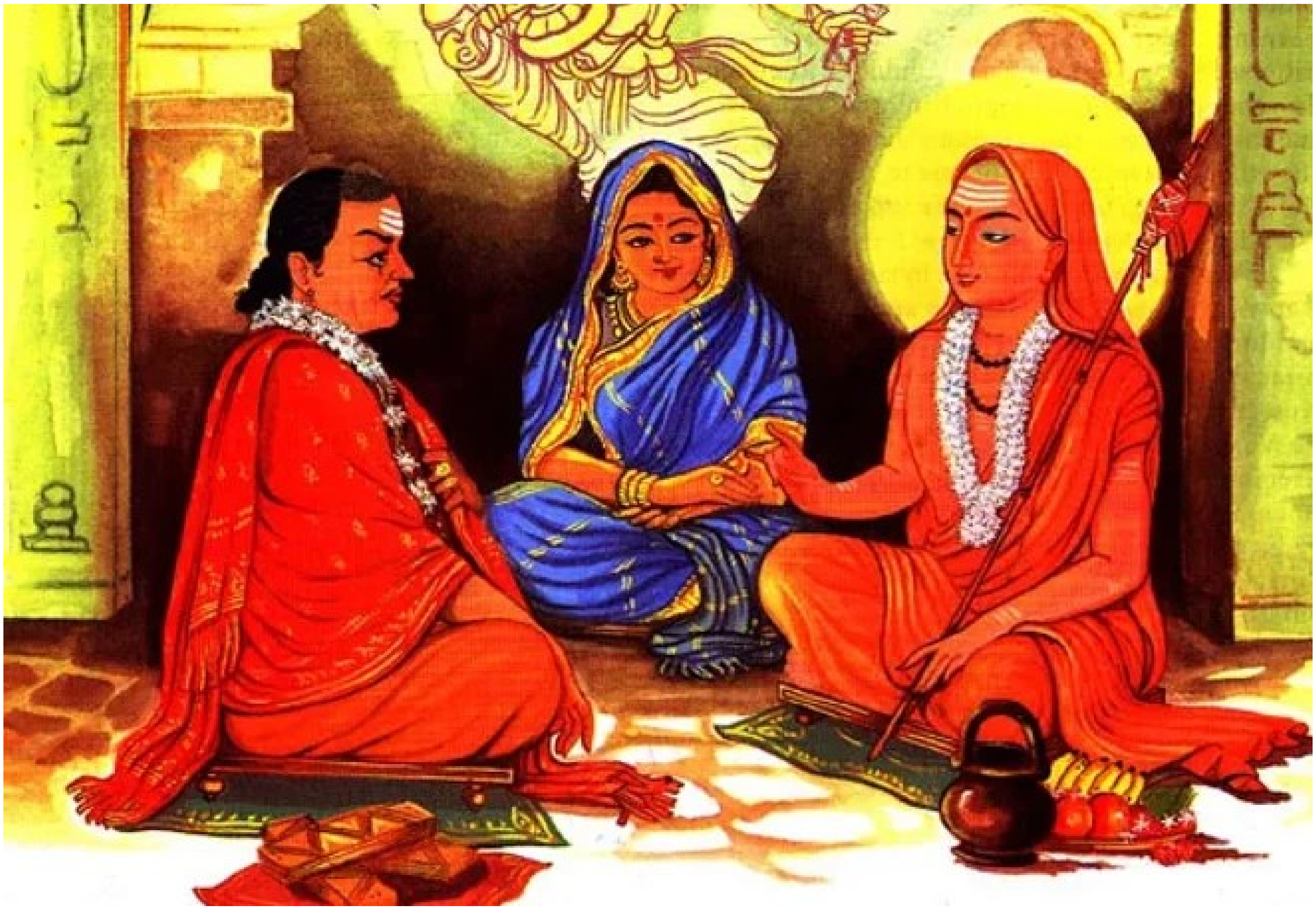

उभय भारती

शंकराचार्य से शास्त्रार्थ

आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य तथा उस युग के प्रसिद्ध शास्त्रविद मंडन मिश्र की पत्नी उभय भारती के बीच संपन्न हुआ शास्त्रार्थ उस काल में महिलाओं की सशक्त स्थिति का उदाहरण है। मंडन मिश्र बिहार के मिथिलांचल क्षेत्र के महिषी गांव के थे और उनकी पत्नी उभय भारती भी उन्हीं की तरह अत्यंत प्रतिभावान और विद्वान थीं। उनकी विद्वता का पता इसी बात से लगता है कि उनके घर का तोता भी वेद और शास्त्रों का ज्ञान बांचता था। शंकराचार्य और मंडन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ की यह शर्त रखी गयी थी कि शास्त्रार्थ में जो पराजित हो जाएगा वह विपक्षी का शिष्य और सन्यासी बन जाएगा।

आश्चर्य की बात ये है कि देश के इन दो परम विद्वानों के बीच 42 दिन तक लगातार चले शास्त्रार्थ की निर्णायक विदुषी उभय भारती थीं। स्वयं शंकराचार्य ने मंडन मिश्र की विद्वान पत्नी उभय भारती को निर्णायक के रूप में चुना था। ऐसे में अंदाजा लगाया जा सकता है कि मंडन मिश्र की पत्नी उभय भारती कितनी विद्वान महिला थीं। द्वारका की शारदा पीठ और ज्योर्तिमठ बद्रीनाथ के शंकराचार्य जगतगुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद जी महाराज द्वारा लिखित ग्रन्थ 'आद्यशंकराचार्य मंडनमिश्र शास्त्रार्थ' में भी इस दुर्लभ घटना का उल्लेख मिलता है। मंडन मिश्र के साथ चले शास्त्रार्थ के दौरान किसी कारणवश

भारती को बाहर जाना पड़ा। लेकिन बाहर जाने से पूर्व भारती ने आदि शंकराचार्य और अपने पति मंडन मिश्र के गले में फूल की एक–एक मालाएं डालते हुए कहा कि ये मालाएं ही आपकी हार–जीत का निर्णय करेंगी। वापस लौटने के बाद भारती ने आदि शंकराचार्य को विजेता घोषित कर दिया। निर्णय की वजह पूछने पर भारती ने कहा कि शास्त्रार्थ में पराजित हो रहे मंडन मिश्र के क्रोध की तपन से उनके गले की माला सूख चुकी है जबकि शंकराचार्य की माला अभी भी ताजी है। तात्पर्य यह है कि क्रोध से जीवन नष्ट होता है।

मंडन मिश्र शास्त्रार्थ में आदि शंकराचार्य से पराजित हो गये परन्तु उनकी पत्नी उभय भारती मंडन मिश्र को शंकराचार्य का शिष्य और संन्यासी नहीं बनने देना चाहती थीं। अपने पति के संन्यासी बन जाने से भारती को बहुत दुःख हुआ। वह बुद्धिमान और विवेकशील थी, उन्होंने शंकर को इस प्रकार संबोधित किया, ''आप जानते हैं कि पवित्र ग्रंथों में कहा गया है कि पत्नी पति के शरीर का आधा हिस्सा होती है, इसलिए, मेरे स्वामी को हराकर, आपने उनका केवल आधा हिस्सा ही जीता है। आपकी जीत तभी पूरी हो सकती है जब आप मेरे साथ भी शास्त्रार्थ करें और खुद को बेहतर साबित करें।'' उभय भारती खुद एक विद्वान महिला थीं और बहुत चतुर भी। वे यह अच्छी तरह से जानती थीं कि शंकर एक सख्त ब्रह्मचारी थे, इसलिए उन्होंने उनसे पूछा कि एक संन्यासी, जिसे नागरिक और गृहस्थ के रूप में कोई अनुभव नहीं है, वह पूर्ण ज्ञान का दावा कैसे कर सकता है? उन्होंने तुरंत रिश्तों और वैवाहिक दायित्वों पर चर्चा शुरू कर दी। शंकर ने स्वीकार किया कि उन्हें इस क्षेत्र में बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है, क्योंकि वह ब्रह्मचारी थे। हालाँकि, उभय भारती ने महसूस किया कि उन्हें बहस फिर से शुरू करने से पहले शंकर को इस विषय के बारे में अध्ययन करने के लिए कुछ समय देना चाहिए। शंकर ने तुरंत प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और अपनी पढ़ाई शुरू करने के लिए चले गए।

अपनी योगिक शक्तियों के माध्यम से शंकर को एक ऐसे राजा के बारे में पता चला जो मरने वाला था। उन्होंने अपने शिष्यों को अपने शरीर को सुरक्षित रखने का निर्देश दिया, जिसे उन्होंने मरते हुए राजा के शरीर में प्रवेश करने के लिए अस्थायी रूप से छोड़ दिया था। राजा बहुत दुष्ट व्यक्ति था। फिर भी उसकी पत्नियाँ उसके प्रति वफादार थीं और जब राजा अपनी मृत्युशैया पर था, तो वे रो रही थीं। अचानक, जब राजा का शरीर जाग उठा, तो पत्नियों में से एक ने देखा कि राजा रहस्यमय परिस्थितियों में ठीक हो गया था। ऐसा लग रहा था कि वह एक बदला हुआ व्यक्ति बन गया है। शंकर ने उस महिला से वह सब सीखा जो उन्हें स्त्री–पुरुष संबंधों और अनुभवों के बारे में जानना था। शरीर से बाहर निकलते समय उन्होंने उस महिला को आशीर्वाद दिया। इस नए ज्ञान से सशक्त होकर शंकर उभय भारती के साथ बहस फिर से शुरू करने के लिए वापस लौटे। इस बार, वे स्पष्ट रूप से अपराजेय थे। उभय भारती और मंडन मिश्र ने विनम्रता से अपना सिर झुकाया और हार स्वीकार कर ली तथा आदि शंकराचार्य और कट्टर वेदांतियों के अनुयायी बन गए। संन्यासी बनने के बाद मंडन मिश्र को सुरेश्वर नाम दिया गया। श्री सुरेश्वराचार्य शंकर भगवत्पाद के सबसे प्रतिभाशाली शिष्य थे। उन्हें दक्षिण में श्रृंगेरी शारदा पीठम के प्रथम प्रमुख के रूप में नियुक्त किया गया था, जो शंकर द्वारा स्थापित मठों में से एक था। वे उस समय शंकर के बाद सबसे बड़े विद्वान थे। उन्हें 'वर्तिकाचार्य' भी कहा जाता है। उन्होंने शंकर के ब्रह्म सूत्र भाष्यम, दक्षिण मूर्ति स्तोत्रम पर भाष्य लिखा।

माना जाता है कि उभय भारती स्वयं देवी सरस्वती का अवतार थीं और ऋषि दुर्वासा के श्राप के कारण धरती पर अवतरित हुई थीं। शंकराचार्य से शास्त्रार्थ समाप्त होने के बाद उभय भारती अपना अवतार समाप्त करके अपने निवास स्थान पर वापस जाना चाहती थीं। शंकराचार्य ने उनसे प्रार्थना की और उनसे पृथ्वी पर लोगों को आशीर्वाद देने का अनुरोध किया। माना जाता है कि उभय भारती ही श्रृंगेरी से शारदाम्बा के रूप में भक्तों को आशीर्वाद देती हैं। उभय भारती सोन नदी के किनारे एक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुई थीं और सभी गुणों और विद्याओं का केंद्र बन गईं थीं। उन्होंने बचपन में ही सभी वेदों और शास्त्रों के साथ–साथ विद्या की अन्य सभी शाखाओं में महारत हासिल कर ली थी।

मुगल काल की सबसे ताकतवर महिला

महाम अंगा

महाम अंगा का संबंध शाही परिवार से नहीं था, लेकिन वह मुग़ल दरबार में इतनी ऊंचाईयों तक पहुंची, कि उस समय के प्रशासन की पहचान एक महिला के परिधानों से होती थी। अगर उसका बेटा उपद्रवी और बददिमाग़ नहीं होता तो उसने अकबर की आड़ में और लंबे समय तक राज किया होता और ख़ैर–उल–मंज़िल के अलावा और कई शानदार स्मारक बनवाए होते। अंगा ने अकबर के नाम पर देश पर राज किया और अपने क़रीबी लोगों को पद दिलवाए, मस्जिदें, मदरसे बनवाए और खुद को तथा अपने परिवार को मालामाल किया।

सन 1561 के क़रीब महाम अंगा बहुत शक्तिशाली हो गई थी और वह लगभग सरकार चलाती थी, जिसे "पेटीकोट सरकार" कहा जाता था। वह एक ऐसे व्यक्ति की दाई मां थी, जो आगे चलकर बादशाह बनने वाला था। महाम अंगा बहुत ही महात्वाकांक्षी थी और अपनी महात्वकांक्षाओं को पूरा करने के तरीक़े भी जानती थी। अंगा ने ख़ैर–उल–मंज़िल, एक मस्जिद और एक मदरसा बनवाया था, जो सिर्फ़ महिलाओं के लिए था। ये मदरसा मुग़ल बादशाह हुमांयू के दीनपनाह किले (पुराना किला) के एकदम सामने और बादशाह शेर शाह सूरी द्वारा बनवाए गए विशाल प्रवेश–द्वार, यानी लाल दरवाज़े के बिल्कुल पास में है। इससे अंगा की महत्वकांक्षों का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। प्रवेश–द्वार पर अंकित अभिलेख में लिखा है, "जलालउद्दीन मोहम्मद (अकबर), जो बादशाहों का बादशाह है, के नाम पर पवित्रता की रक्षक महाम बेग (अंगा) ने धार्मिक कामों के लिए ये भवन बनवाया, ख़ैर–उल–मंज़िल बनवाने में शहाबुद्दीन अहमद ख़ान (अंगा का दामाद) ने मदद की।"

ख़ैर–उल–मंज़िल के निर्माण के दशकों पहले महाम अंगा ताक़तवर होने लगी थी। सन 1541 में बादशाह हुमायूं और उसकी पत्नी हमीदा बानू बेगम, शेरशाह सूरी द्वारा आगरा की सत्ता से बेदख़ल किए जाने बाद सफ़ाविद शाह तहमास्प से मदद मांगने के लिए ईरान चले गए थे। नदीम ख़ान कूका हुमायूं का दूध–भाई था, जिसने कई सालों तक हुमायूं की पूरी वफ़ादारी के साथ ख़िदमत की थी। वह अपनी पत्नी महाम अंगा और दो पुत्रों, कुली ख़ान कूका और अधम ख़ान कूका को छोड़कर हुमायूं के साथ ईरान गया था।

अंगा को मुग़ल साम्राज्य के भावी उत्तराधिकारी यानी एक साल के अकबर की प्रमुख दाई नियुक्त कर दिया था और अकबर उसी की देख–रेख में परवरिश पा रहा था। मुग़ल शाही परिवार में, शाही और क़ाबिल महिलाओं द्वारा शाही बच्चों को स्तनपान करवाने की परंपरा होती थी। ये महिलाओं के लिए बहुत सम्मान की बात हुआ करती थी। ये महिलाएं बहुत शांत और आध्यात्मिक स्वभाव की हुआ करती

मुगलों की सत्ता

थीं। इनके चुनाव में इन दोनों बातों का ख़ास ख़्याल रखा जाता था। अकबर की देख–रेख का ज़िम्मा जब अंगा को सौंपा गया था, तब उसका अपना बेटा अधम दस साल का था। अंगा ने दरअसल अकबर को कभी अपना दूध नहीं पिलाया। उसकी निगरानी में 11 दाईयां हुआ करती थीं जिनकी मुखिया जीजी अंगा थी। जीजी अंगा का अपना बच्चा अकबर का हम उम्र था। जीजी अंगा ग़ज़नी के शम्सुद्दीन की पत्नी थी, जो बाद में अतका ख़ान के नाम से मशहूर हुआ। अतका ख़ान वह सैन्य अधिकारी था, जिसने शेरशाह सूरी के ख़िलाफ़ चौसा के युद्ध में हुमायूं की जान बचाई थी।

महाम अंगा ने अकबर के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और एक बार अकबर की जान भी बचाई थी। अकबर जब तीन साल का था, तब काबुल में उसके चाचा कमरान ख़ान ने उसे बंधक बना लिया था। कमरान, हुमायूं का सौतेला भाई और बाबर का पुत्र था। जब हुमायूं भारत पर शासन कर रहा था, तब कमरान काबुल पर हुकूमत कर रहा था। कमरान ने किले की चारदीवारी की प्राचीर पर अकबर को बिठा दिया था। उसने अकबर को ढ़ाल की तरह इस्तेमाल किया था, ताकि हुमायूं उसके खिलाफ़ तोपों का इस्तेमाल ना कर सके। ये बात जब महाम को पता लगी, तो वह फ़ौरन वहां पहुंची और किले की प्राचीर से अकबर को छुड़ा लाई।

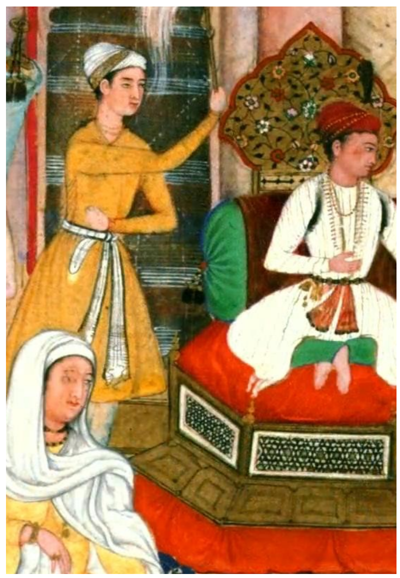

हुमायूं जब मुगल साम्राज्य वापस हासिल करने दोबारा भारत आया, तो उसके शाही ज़नाना ख़ाने की सभी महिलाएं काबुल में ही रहीं, लेकिन महाम अंगा, 13 साल के अकबर और उसके पिता हुमायूं के साथ भारत वापस आई। जब हुमायूं और उसकी बेगम हमीदा बानू फ़ारस (ईरान) भागकर गए थे, तब अकबर को क़ंधार में अंगा के हवाले कर गए थे। जब अकबर ने काबुल को दोबारा जीता तो तमाम महिलाएं कंधार में ठहर गईं और हुमांयू दोबारा भारत में अपना शासन स्थापित करने के लिए भारत रवाना हो गया था। एक साल के बाद ही पुराने किले के पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर हुमायूं की मृत्यु हो गई। इस मौक़े पर महाम अंगा मौजूद थीं। हुमांयू के निधन के बाद सेनापति बैरम ख़ां ने पादशाह (बादशाह) के रुप में 14 साल के अकबर की ताजपोशी की। बैरम ख़ां खुद भी पदोन्नत होकर वकील–ए–सल्तनत (वज़ीर–ए–आज़म) बन गया।

अंगा और अकबर के बीच बढ़ती नज़दीकियों और अंगा के प्रभावशाली होने से बैरम ख़ां चिंतित होने लगा था। उसे लगने लगा था कि उसकी हत्या की साजिश रची जा रही है, लेकिन अंगा ने उसे समझा दिया कि ये उसकी ग़लतफ़हमी है। जल्द ही अंगा नए दरबार में बहुत प्रभावशाली हो गई। एक तरफ़ जहां अंगा का पुत्र जब चाहे तब युवा अकबर से मिल सकता था, वहीं दरबार के वरिष्ठ लोगों को अकबर से मिलने के लिए काफ़ी इंतज़ार करना पड़ता था।

अकबर और बैरम ख़ां के बीच दूरियां बढ़ाने के लिए अंगा ने एक तरह से तख़्तापलट जैसी कार्रवाई की। उसकी सलाह पर अकबर अचानक अपनी मां हमीदा बानू बेगम से मिलने के बहाने दिल्ली चला गया। उस समय हमीदा बानू दिल्ली में थी। दिल्ली में रहते हुए अंगा ने हमीदा बानू के साथ मिलकर बैरम ख़ां के बढ़ते प्रभाव के खिलाफ़ युवा अकबर को भड़काया। उसने अकबर से कहा, कि चूंकि बैरम ख़ां उसके ख़िलाफ़ साज़िश कर सकता है, इसलिए उसका उनके (अकबर) के साथ रहने का कोई तुक नहीं है, इसलिए वह हज के लिए मक्का जाना चाहती है। अकबर भावुक हो गया और उसने अंगा से दिल्ली में उसके (अकबर) के साथ रहने को कहा। अंगा तो बहुत पहले से यही चाहती थी। इसके बाद अकबर ने अंगा के दामाद शाहबउद्दीन अहमद ख़ान को मुग़ल सम्राज्य के कामकाज का ज़िम्मा सौंप दिया। बाद में माहम अंगा ने अकबर से कहकर बैरम खां को ही मक्का भिजवा दिया जहां रास्ते में उसकी हत्या कर दी गई।

अंगा के पुत्र अधम ख़ान ने मालवा के शासक बाज़ बहादुर को हरा दिया था। अधम ख़ान के हाथ ख़ज़ाना और खूबसूरती के लिए मशहूर कई नर्तकियां लग गईं। अधम ख़ान ने अकबर को सिर्फ कुछ हाथी भेज दिए, बाक़ी ख़ज़ाना और क़ैद की गईं महिलाएं अपने ही पास रख लीं। अकबर को जब पता चला कि अधम ख़ान ने सारा माल उसे नहीं भेजा है, तो वह खुद दक्षिणी मालवा की तरफ़ गया। जब ये बात महाम अंगा को पता लगी तो उसने हस्तक्षेप किया। अधम ख़ान ने पूरा ख़ज़ाना और पकड़ी गईं सभी नर्तकियां अकबर को सौंप दीं। एक समय आगरा पहुंचने के बाद अधम ख़ान ने तमाम वज़ीरों के सामने अकबर के ख़ास वफादार शम्सुद्दीन अतका ख़ान की हत्या करवा दी। अधम ख़ान पास ही के शाही ज़नाना ख़ाने में गया, जहां अकबर दोपहर की नींद ले रहा था। अकबर की आंख खुल गई और वहां अतका ख़ान का शव देखकर वह ग़ुस्से में आ गया। उसने तलवार से अधम ख़ान पर हमला किया, जिससे वह नीचे गिर गया। इसके बाद अकबर ने अपने नौकरों से अधम ख़ान को बांधकर छत से क़रीब आठ फ़ुट नीचे फेंकने का आदेश दिया जिससे उसकी मौत हो गई। इसके बाद अकबर महाम अंगा के पास पहुंचा और सब कुछ बताया तो उसने कहा, "आपने अच्छा किया"। चालीस दिन के बाद महाम अंगा की भी मृत्यु हो गई।

(साभारः hindi.livehistoryindia.com)

वीरांगना

स्वामीधर्म की अद्‌भुत मिसाल : पन्ना धाय

'तू पुण्यमयी, तू धर्ममयी,
तू त्याग तपस्या की देवी,
धरती के सब हीरे–पन्ने,
तुझ पर वारें पन्ना देवी,
तू भारत की सच्ची नारी,
बलिदान चढ़ाना सिखा गई,
तू स्वामीधर्म पर, देशधर्म पर,
ह्रदय लुटाना सिखा गई'

चित्तौड़गढ़ की गलियों में वीरांगना पन्ना धाय के लिए ये पंक्तियां आज भी गूंजती हैं। चित्तौड़गढ़ के इतिहास में जहाँ पद्‌मिनी के जौहर की अमरगाथाएं, मीरा के भक्तिपूर्ण गीत गूंजते हैं वहीं पन्ना धाय जैसी मामूली स्त्री की स्वामीभक्ति की कहानी भी अपना अलग स्थान रखती है।

पन्ना धाय का जन्म 08 मार्च 1490 को चित्तौड़गढ़ के निकट माता जी की पंडोली नामक गांव में हुआ था। पन्ना धाय किसी राजपरिवार से नहीं बल्कि गुर्जर परिवार से थीं। उनके पिता का नाम हरचंद हांकला था, जिन्होंने राणा सांगा के साथ कई युद्धों में भाग लिया था। राणा सांगा ने 1527 ईस्वी की शुरुआत में बाबर की सेना को हराया था। हालांकि, 1528 ईस्वी में राणा सांगा को उनके ही एक आदमी ने जहर देकर मार डाला था। राणा सांगा के 4 बेटे थे, भोजराज सिंह, रतन सिंह, विक्रमादित्य और उदय सिंह द्वितीय। 1531 ईस्वी में रतन सिंह की युद्ध में मृत्यु हो गई और 1533 ईस्वी में जब बहादुरशाह ने चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण किया, तो रानी कर्णावती समेत कई महिलाओं ने किले में ही जौहर कर लिया था। रानी कर्णावती की हालत देखते हुए पन्ना को उदय सिंह की धाय मां बनाया गया था। पन्ना ने उदय सिंह को अपना दूध पिलाया था और अपने बच्चे की तरह उनकी देखभाल की थी। इसलिए, उन्हें 'पन्ना धाय' कहा जाने लगा था। पन्ना का अपना भी एक बेटा था चंदन, जो उदय सिंह की उम्र का ही था। पन्ना ने दोनों को समान प्यार और स्नेह से पाला था। चंदन और उदय बहुत अच्छे दोस्त थे और दोनों एक ही कमरे में सोते थे।

उस समय चित्तौड़गढ़ का किला आन्तरिक विरोध व षड्यंत्रों में जल रहा था। मेवाड़ का भावी राणा उदय सिंह किशोर हो रहा था। तभी उदय सिंह के पिता के चचेरे भाई बनवीर ने एक षड्यन्त्र रच कर उदय सिंह के पिता की हत्या महल में ही करवा दी तथा उदय सिंह को मारने का अवसर ढूंढने लगा। उदय सिंह की माता को संशय हुआ तो उन्होंने उदय सिंह को पन्ना को सौंप कर कहा, "पन्ना अब यह राजमहल व चित्तौड़ का किला इस लायक नहीं रहा कि मेरे पुत्र तथा मेवाड़ के भावी राणा की रक्षा कर सकें। तू इसे अपने साथ ले जा और किसी तरह कुम्भलगढ़ भिजवा दे।" पन्ना धाय ने उदय सिंह की माँ रानी

कर्मावती के सामूहिक आत्म बलिदान द्वारा स्वर्गारोहण पर बालक की परवरिश करने का दायित्व संभाला था। पन्ना ने पूरी लगन से बालक की परवरिश और सुरक्षा की। पन्ना राजवंश और अपने कर्तव्यों के प्रति सजग थी व उदय सिंह को बचाना चाहती थी। उसने उदय सिंह को एक बांस की टोकरी में सुलाकर उसे जूठी पत्तलों से ढंककर एक विश्वास पात्र सेवक के साथ महल से बाहर भेज दिया। बनवीर को धोखा देने के उद्देश्य से अपने पुत्र चंदन को उदय सिंह के पलंग पर सुला दिया। बनवीर रक्तरंजित तलवार लिए उदय सिंह के कक्ष में आया और उसके बारे में पूछा। पन्ना ने उदय सिंह के पलंग की ओर संकेत किया जिस पर उसका पुत्र सोया था। बनवीर ने पन्ना के पुत्र को उदय सिंह समझकर मार डाला। पन्ना अपनी आँखों के सामने अपने पुत्र के वध को अविचलित रूप से देखती रही। बनवीर को पता न लगे इसलिए वह आंसू भी नहीं बहा पाई। बनवीर के जाने के बाद अपने मृत पुत्र की लाश को चूमकर राज. कुमार को सुरक्षित स्थान पर ले जाने के लिए निकल पड़ी।

पुत्र की मृत्यु के बाद पन्ना उदय सिंह को लेकर बहुत दिनों तक शरण के लिए भटकती रही पर दुष्ट बनबीर के खतरे के डर से कई राजकुल जिन्हें पन्ना को आश्रय देना चाहिए था, उन्होंने पन्ना को आश्रय नहीं दिया। अंत में कुम्भलगढ़ में उसे यह जाने बिना कि उसकी भवितव्यता क्या है, शरण मिल गयी। उदय सिंह क़िलेदार का भांजा बनकर बड़ा हुआ। तेरह वर्ष की आयु में मेवाड़ी उमरावों ने उदय सिंह को अपना राजा स्वीकार कर लिया और उसका राज्याभिषेक कर दिया। उदय सिंह 1542 में मेवाड़ के महाराणा बन गए।

जौहर करने वाली वीरांगना पद्मावती

450 साल पहले सूफी साहित्यकार मलिक मोहम्मद जायसी के लिखे पद्मावत के मुताबिक, रानी पद्मिनी चित्तौड़गढ़ के रावल रतन सिंह की पत्नी थी। वो सिंहल द्वीप (श्रीलंका) की राजकुमारी थी। चित्तौड़ से निष्कासित राघव पंडित ने अलाउद्दीन के सामने पद्मिनी की खूबसूरती का इतना बखान किया था कि उसने पद्मावती को पाने के लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। महीनों चित्तौड़ किले का घेरा डाले वह पड़ा रहा। लेकिन कोई नतीजा निकलता न देख उसने छल कपट की नीति अपनाई। संधि का नाटक कर उसने रतन सिंह को बंदी बना लिया। इसके बाद बहादुर रानी पद्मिनी ने योजना के तहत सुल्तान को मिलने आने का पैगाम भिजवाया। 1600 डोलियों में रानी का लवाजमा दुश्मन के खेमे में पहुंचा। लेकिन इन डोलियों में रानी की दासियां नहीं बल्कि चित्तौड़ के सैनिक थे। पद्मिनी गोरा और बादल नाम के अपने सेनापतियों की मदद से रावल को छुड़ाने में कामयाब रही। सुल्तान को पद्मिनी की इस चतुराई भरी वीरता का पता लगा तो उसने राजपूत सेना का पीछा किया, लेकिन रावल किले में पहुंचने में सफल रहे। रतन सिंह के सुल्तान की कैद में होने के दौरान कुंभलनेर के राजा देवपाल ने पद्मिनी को विवाह प्रस्ताव भिजवाया था। रतन सिंह को पता चला तो उसने देवपाल से युद्ध किया। युद्ध में देवपाल की मौत हो गई लेकिन रतन सिंह भी घायल हो गया। कुछ दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई और पद्मिनी सती हो गई।

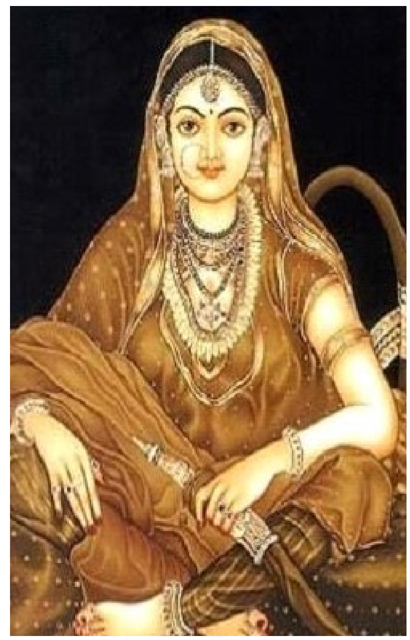

एक दूसरी कहानी के मुताबिक, राघव पंडित से पद्मिनी की खूबसूरती की चर्चा सुनकर चित्तौड़ पहुंचे अलाउद्दीन ने रानी की एक झलक के बदले रतन सिंह को घेरा उठाने का प्रस्ताव भेजा। उसे शीशे में रानी का चेहरा दिखाया गया। पद्मावती की खूबसूरती देख कर तो जैसे अलाउद्दीन पागल ही हो गया। अब उसने अपना इरादा बदल दिया। उसने रतन सिंह को पद्मावती या चित्तौड़ के राज्य में से एक चुनने का पैगाम भेजा। रावल ने युद्ध चुना। पद्मावती ने जौहर का साहसिक फैसला किया। अलाउद्दीन को उसके खूबसूरत शरीर की राख भी नसीब नहीं हुई। पद्मावती ने सैकड़ों दूसरी महिलाओं के साथ जौहर कर राजपूताने के दूसरे साके को पूरा किया।

राजपूत राज्यों में युद्ध के दौरान जब दुश्मन पर जीत की संभावना पूरी तरह खत्म हो जाती थी तो साका किया जाता था। साका के तहत दो काम किए जाते थे– केसरिया और जौहर। जौहर महिलाएं करती थीं जबकि केसरिया पुरुष करते थे। केसरिया अंतिम युद्ध होता था। इसमें सभी योद्धा सिर्फ मारने या मरने की ही शपथ लेते थे, यानी उन्हें जिंदा लौटना ही नहीं होता था। सभी योद्धा सिर पर केसरिया पगड़ी बांध लेते थे, किले के सभी दरवाजे खोल दिए जाते थे और ये केसरिया दस्ता इतनी तेजी से दुश्मन पर टूट पड़ता था कि वो भौंचक्का रह जाता था।

सबसे ताकतवर और पहली महिला सुल्तान

रजिया सुल्तान

दिल्ली सल्तनत की मशहूर शासक और इतिहास के प्रसिद्ध सुल्तान शमसुद्दीन इल्तुतमिश की इकलौती बेटी रजिया सुल्तान का जन्म सन् 1205 में बदायूं में हुआ था। रजिया दिल्ली सल्तनत की पहली महिला शासक थीं। उनका पूरा नाम जलालात उद–दीन–रजिया था। उस दौर में जहां बेगमों को सिर्फ महल की चारदीवारी के भीतर रखा जाता था, वहीं रजिया ने दिल्ली सल्तनत की बागडोर अपने हाथ में ली।

रजिया सुल्तान तीन भाइयों में इकलौती और सबसे काबिल थीं। रजिया सुल्तान का बचपन का नाम हफ्सा मोइन था लेकिन सभी उन्हे रजिया कहकर ही पुकारते थे। उनके पिता इल्तुतमिश ने रजिया सुल्तान की प्रतिभा को बचपन में ही भांप लिया था और उन्हें भी अपने बेटों की तरह ही सैन्य प्रशिक्षण दिया एवं उसके अंदर एक कुशल प्रशासक बनने के सभी गुण विकसित किए थे। सन् 1236 ई. से 1240 ई. तक रजिया ने दिल्ली पर शासन किया। रजिया पर्दा प्रथा को त्यागकर पुरुषों की तरह दरबार में बैठती थीं।

रजिया सुल्तान ने अपनी बुद्धिमत्ता और विवेकशीलता के कारण दिल्ली का सिंहासन कुशलतापूर्वक संभाला और रुढ़िवादी मुस्लिम समाज को चौंका दिया और उन्होंने खुद को एक दूरदर्शी, न्यायप्रिय, व्यवहारकुशल, प्रजा के हित करने वाली शासिका साबित किया। उन्होंने अपने राज्य का जमकर विस्तार किया एवं विकास के काम करवाए। गद्दी संभालने के बाद रज़िया ने रीति रिवाजों के विपरीत पुरुषों की तरह सैनिकों का कोट और पगड़ी पहनना पसंद किया। साथ ही युद्ध में बिना नकाब पहने शामिल होने लगीं।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाली पहिला मुस्लिम महिला शासक रजिया सुल्तान एक कुशल प्रशासक थीं, जिन्होंने एक आदर्श शासक की तरह अपने राज्य में विकास के काम किए। उन्होंने न सिर्फ अपने उत्तम सैन्य कुशलता के बल पर दिल्ली को सुरक्षित रखा, बल्कि अपने राज्य की कानून व्यवस्था को दुरुस्त किया, शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई स्कूल, कॉलेजों एवं शैक्षणिक संस्थानों का निर्माण करवाया। अपने राज्य में पानी की व्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाने के लिए कुएं और नलकूप खुदवाए, सड़कें बनवाईं। इसके अलावा उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम एकता के लिए काम किया और कला, संस्कृति व संगीत को भी प्रोत्साहन दिया।

इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद उनके बड़े बेटे ने उत्तराधिकारी के रूप में शासन संभाला, लेकिन उसकी कम उम्र में ही मृत्यु हो गई। मुस्लिम वर्ग ने रजिया के राजगद्दी संभालने का विरोध किया, और इल्तुतमिश के छोटे बेटे रक्नुद्दीन फिरोज शाह को राजगद्दी पर बैठाया गया। रक्नुद्दीन विलासी और लापरवाह था, जिसके खिलाफ जनता में आक्रोश उमड़ा और 9 नवंबर 1236 को रक्नुद्दीन तथा उसकी माता शाह तुर्कान की हत्या कर दी गई। इसके बाद लोगों के पास कोई विकल्प न होने की वजह से रजिया को शासन की बागडोर दी गई। इल्तुतमिश एकमात्र ऐसा मुस्लिम शासक था, जिसकी मृत्यु के बाद किसी महिला उत्तराधिकारी को नियुक्त किया गया। अपने पिता के समान ही रजिया शासन कार्यों में रुचि रखती थीं। आखिरकार, वह दिल्ली की गद्दी पर बैठी थी, जो सुल्तानों के लिए आरक्षित पद था, इसलिए उसने अपने नाम के आगे "सुल्तान" शब्द लगाना चुना। युवा रजिया, 30 वर्ष की आयु में वर्ष 1236 ई. में रजिया सुल्तान बन गईं।

दिल्ली सल्तनत

उन्होंने अपने नाम से सिक्के भी चलवाए, जिससे दिल्ली की शासक के रूप में उनके अधिकार और शासन की पुष्टि हुई। यह मुस्लिम दुनिया में उनकी संप्रभुता की पुष्टि भी करता था। सिक्कों पर उनके पिता के साथ–साथ उनका नाम भी अंकित था, जिससे बेंत–अल–सुल्तान के रूप में उनकी वैधता मजबूत हुई। बाद में दरबारियों ने उन्हें जलालत–उद–दीन रजिया की उपाधि दी। इल्तुमिश की कल्पना के अनुसार, रजिया एक मजबूत और आत्मविश्वासी शासक साबित हुईं। वह एक बहादुर योद्धा थी जिसने युद्ध में मजबूर सेना का नेतृत्व किया। किंवदंती है कि वह सेना प्रमुख के रूप में खुलेआम हाथी पर सवार होकर युद्ध में उतरी थीं। रजिया ने अपने छोटे से शासनकाल में लोगों के कल्याण के लिए काम किया। उन्होंने कई शैक्षणिक संस्थानों और सार्वजनिक पुस्तकालयों की नींव रखी। इन संस्थानों को इस तरह से डिजाइन किया गया था कि वे कई अन्य संस्कृतियों के विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में पारंपरिक कार्यों का ज्ञान प्रदान करते थे।

सुल्तान रजिया ने मलिक याकूत को अमीर–ए–अखुर या घोड़ों का सेनापति नियुक्त किया, जिसे तुर्की सरदारों ने अपमान के रूप में देखा, क्योंकि परंपरागत रूप से सभी महत्वपूर्ण पद उन्हीं के पास थे। सरदार इस बात से नाखुश थे कि सुल्तान अपनी स्वतंत्रता का दावा कर रहा था। राजगद्दी पर बैठने के बाद, रजिया ने

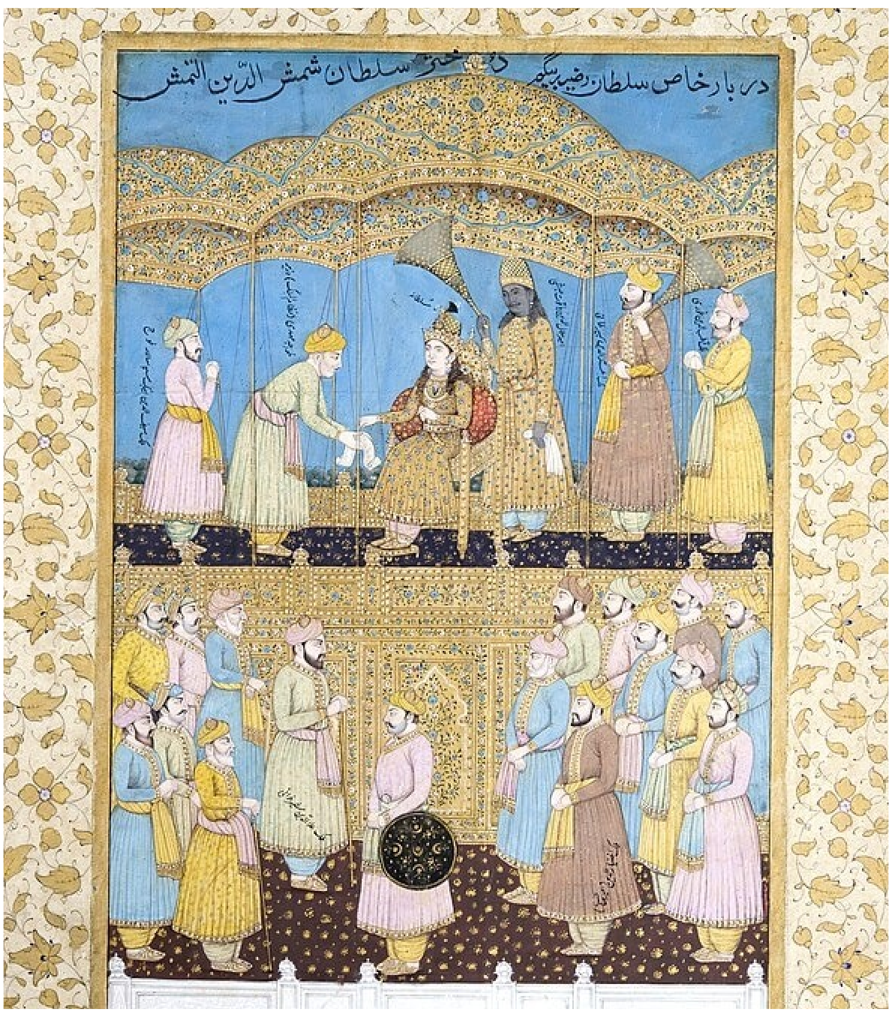

मलिक याकूत को अमीर–ए–आखूर के पद पर नियुक्त किया, जो घोड़ों के सेनापति के लिए नियत पद था। इस कृत्य को तुर्की रईसों ने उजागर किया, जिन्होंने इसे अपना अपमान माना।

इब्न–बतूता ने रजिया और मलिक याकूत के बीच प्रेम के बारे में भी लिखा है जिसे इतिहासकारों द्वारा काल्पनिक माना जाता है क्योंकि इसके लिए कोई ठोस सबूत नहीं है। रजिया ने याकूत पर जो भरोसा अर्जित किया वह सिंहासन के प्रति उसके समर्पण के कारण था, जिसे पीढ़ियों तक गलत तरीके से पेश किया गया और सनसनीखेज बनाया गया।

यह वर्ष 1240 था, रजिया के सुल्तान बनने के ठीक चार साल बाद जब भटिंडा के गवर्नर ने उसके खिलाफ विद्रोह कर दिया। मलिक अल्तुनिया ने घोषणा की कि वह अब किसी महिला का शासन स्वीकार नहीं करेगा। विद्रोह को कुचलने के लिए रजिया को युद्ध के मैदान में मलिक से लड़ना पड़ा। इस अवसर का लाभ उठाते हुए, तुर्की सरदारों ने रजिया के भरोसेमंद सहयोगी मलिक याकूत को मार डाला। युद्ध में रजिया भी पराजित हुईं और उन्हें जेल भेज दिया गया। इस बीच, विद्रोही सरदारों ने 1240 ई. में बहराम शाह को गद्दी पर बिठा दिया था।

कैद में, रजिया के पास भटिंडा (पंजाब) के मलिक अल्तुनिया से हाथ मिलाने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। ऐसा कहा जाता है कि रजिया ने अपने अपहरणकर्ता अल्तुनिया को मना लिया, जिसने उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखा और उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। आखिरकार, सितंबर 1240 ई. में, रजिया और अल्तुनिया दिल्ली की ओर बढ़े, जहाँ बहराम शाह गद्दी पर थे। उनका उद्देश्य रजिया की खोई हुई गद्दी को पुनः प्राप्त करना था, लेकिन जल्द ही सेना बहराम शाह के हाथों पराजित हो गई और रजिया युद्ध के मैदान में ही मारी गई।

(साभार: www.indiatoday.in)

पहली शिक्षिका

सावित्री बाई फुले

गालियां खाकर भी शिक्षा का अलख जगाया

किसी शिक्षिका पर सिर्फ इसलिए कीचड़–पत्थर फेंके जाएं और राह चलते गालियां दी जाएं क्योंकि वह बालिकाओं को पढ़ाने के लिए स्कूल जाने का साहस कर रही थी, इस पर सहज कौन भरोसा करेगा? लेकिन यह पौने दो सौ साल पहले का सच है, जब स्त्रियों के लिए पढ़ना गैरजरूरी माना जाता था। ऐसे दौर में एक स्त्री और वह भी छोटी जाति से! वे न केवल शादी के बाद पढ़ीं बल्कि पढ़ कर बालिकाओं के बीच अज्ञान का अंधियारा दूर करने के लिए शिक्षिका के तौर पर सामने आईं। सावित्री बाई फुले को प्रथम भारतीय महिला शिक्षिका होने का गौरव प्राप्त है। सच तो ये है कि जीवन के अन्य अनेक क्षेत्रों में भी वे प्रथम थीं।

पत्नी–बेटी द्वारा पति और पिता को मुखाग्नि देने की खबरें तो अब प्रायः मिल जाती हैं लेकिन 1890 में किसी स्त्री द्वारा यह साहस करने पर उसे व्यापक विरोध का सामना करना पड़ा था। सामाजिक कुरीतियों, अगड़ों–पिछड़ों, छुआछूत, पुरुष–महिला के बीच भेदभाव, सती प्रथा, भ्रूण हत्या आदि के खिलाफ जीवन पर्यन्त संघर्षरत सावित्री बाई फुले, पति ज्योतिबा फुले के निधन के बाद अंतिम संस्कार को लेकर हो रहे विवाद के बीच आगे आई थीं और चिता को अग्नि देकर संदेश दे दिया था कि स्त्री के लिए कुछ भी वर्जित नहीं है। उसे कमतर न समझें। उसके लिए सब संभव है.

सिर्फ 9 साल की उम्र में ज्योतिबा फुले की पत्नी बनी सावित्री बाई फुले शादी के मौके पर निरक्षर थीं। उनका सौभाग्य था उनका विवाह ऐसे इंसान से हुआ जिसका जन्म ही समाज सुधार और सामाजिक कुरीतियां के विरुद्ध संघर्ष के लिए हुआ था। ज्योतिबा ने इसकी शुरुआत घर–परिवार से अशिक्षित पत्नी को शिक्षित करके की। सावित्री बाई का आगे का जीवन हर कदम पर सिर्फ पति का साथ निभाने का नहीं बल्कि महिला समाज को हर मोर्चे पर सकारात्मक संघर्ष के लिए तैयार करने और सशक्त करने का था। पति के साथ प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद सावित्री बाई को आगे की शिक्षा में ज्योतिबा के दोस्तों सखाराम यशवंत परांजपे केशवराम शिवराम भावलकर की मदद मिली। आगे उन्होंने टीचर्स ट्रेनिंग के दो कोर्स भी किए, लेकिन उस दौर की परंपराओं के खिलाफ किसी स्त्री और खासतौर पर निचली जाति की स्त्री के लिए पढ़ाई करना और आगे का रास्ता इतना आसान नहीं था। नाराज अगड़ी जाति के लोगों के विरोध के बीच ज्योतिबा–सावित्री बाई के पास दो विकल्प थे– घुटने टेकना या फिर घर छोड़ना। दोनों ने 1849 में दूसरे विकल्प को चुना और अपना रास्ता बनाकर दूसरों को अनुकरण करने का इतिहास रच दिया।

घर छोड़ने के बाद फुले दंपति को दोस्त उस्मान शेख और उनकी बहन फातिमा बेगम शेख का सहयोग मिला। सावित्री बाई और फातिमा ने ग्रेजुएशन साथ ही पूरा किया। इन दोनों ने शेख के घर ही 1849 में पहला स्कूल खोला। 1850 में सावित्री बाई और ज्योतिबा ने दो और स्कूल खोले। आगे इस कड़ी में 1852 तक कुल 18 स्कूल शुरू हुए। शुरुआत में पूना में नौ बालिकाएं स्कूल पहुंचीं। फिर 25, और आगे वहां के तीन अन्य स्कूलों को मिलाकर 150 बालिकाएं घर से पढ़ने के लिए निकलीं। लेकिन ये सब इतना आसान नहीं था। कदम–कदम पर प्रतिरोध। स्कूल के रास्ते सावित्री बाई पर गालियों की बरसात होती। उन पर सड़े

टमाटर, अंडे, गोबर–गन्दगी और ईंट–पत्थर तक फेंके जाते। ऊंची जाति के विरोध करने वाले लोग शूद्रों और बालिकाओं को शिक्षित करने के उनके कार्य को पाप बताते थे। सावित्री बाई ने ऐसे हर विरोध को दरकिनार किया। स्कूल जाते समय वे अपने बैग में एक अतिरिक्त साड़ी लेकर चलती थीं। रास्ते में कीचड़ और गोबर से गंदी हो गई साड़ी को विद्यालय पहुंचकर बदलती थीं और फिर बच्चों को पढ़ाती थीं।

बालिकाओं को स्कूल आने के लिए प्रेरित करने के लिए फुले दंपति ने नई पहल की। आर्थिक तौर पर कमजोर लेकिन मेधावी बालिकाओं के लिए वजीफे का इंतजाम किया। महाराष्ट्र में कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए 52 निःशुल्क हॉस्टल बनाए। स्कूलों में इंग्लिश, गणित, साइंस, सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई पर खास ध्यान दिया। नियमित पैरेंट–टीचर्स मीटिंग शुरू कीं। इन प्रयासों के नतीजे भी दिखे। इन स्कूलों की बेहतर पढ़ाई ने सरकारी स्कूलों के लिए चुनौती बढ़ाई। कमजोर और दलित वर्ग की बालिकाओं के दाखिले बढ़े, लेकिन उच्च वर्ण के पुरातनपथियों ने रास्ते में रूकावटें भी खूब डालीं। सावित्री बाई यह कहते हुए आगे बढ़ती रहीं कि आपका विरोध मुझे अपना काम जारी रखने के लिए प्रेरित करता है।

सावित्री बाई की कोशिशें बालिकाओं को शिक्षित करने की कोशिशों तक सीमित नहीं रही। वे और उनके महान पति ज्योतिबा फुले जानते थे कि सामाजिक विषमता और कुरीतियों को दूर किए बिना दलितों–कमजोरों के जीवन का अंधियारा दूर नहीं होगा। फुले दंपति ने 24 सितंबर 1873 को सत्य शोधक समाज का गठन किया। सामाजिक समानता के उद्देश्य से गठित इस संस्था के दरवाजे बिना भेदभाव के जाति–वर्ग–समूह के लिए खुले थे। अगला विस्तार सत्य शोधक विवाह था, जिसे संपादित करने के लिए किसी पुरोहित की आवश्यकता नहीं थी। बिना आडंबर दहेजविहीन इन शादियों में नव दंपति शिक्षा और समानता की शपथ के साथ दांपत्य सूत्र में बंधते थे।

सच्चे अर्थों में सावित्री बाई महिला सशक्तिकरण की नायिका थीं। 1852 में उन्होंने महिला अधिकारों की आवाज उठाने के लिए महिला सेवा मंडल की स्थापना की। बाल विवाह, दहेज, सती प्रथा, भ्रूण हत्या और पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कमतर आंकने की किसी भी कोशिश का पुरजोर विरोध किया। विधवा पुनर्विवाह पर जोर दिया। शारीरिक शोषण की वजह से गर्भवती होने वाली विधवाओं, बलात्कार पीड़ित लड़कियों और अनाथों के संरक्षण के लिए आश्रम स्थापित किए। सार्वजनिक कुओं से पानी लेने पर दलितों पर लगी रोक का उन्होंने विरोध किया।

अपने घर के बाहर सब वर्गों के लिए कुंआ बनवाया। उन्होंने नाइयों को विधवाओं के सिर के बाल मुड़ने से मना किया और विधवाएं परिवार–समाज के बीच साथ और बराबरी के साथ बैठें, इसके लिए जनजागरण अभियान चलाए।

महाराष्ट्र में 1875–77 के अकाल के दौरान सावित्री बाई की अगुवाई में सत्य शोधक समाज के कार्यकर्ताओं ने व्यापक पैमाने पर भूख–प्यास से मरते लोगों की मदद की भरपूर कोशिश की। 1896 में महाराष्ट्र एक बार फिर अकाल की चपेट में था। सावित्री बाई फिर से अपने सहयोगियों के साथ पीड़ितों की मदद में जुटी रहीं। अगली विपदा प्लेग की थी। कभी न थकने और रुकने वाली सावित्री बाई और उनके दत्तक पुत्र यशवंत ने पूना के बाहरी हिस्से में प्लेग पीड़ितों के इलाज के लिए एक क्लीनिक स्थापित किया था। सावित्री बाई को पता चला कि पांडुरंग बाबाजी गायकवाड़ का पुत्र प्लेग की चपेट में आ गया है। वे फौरन ही वहां पहुंचीं और बीमार बच्चे को अपनी पीठ पर लेकर क्लीनिक पहुंचीं। दुर्भाग्य से वे भी प्लेग की चपेट में आ गईं और 10 मार्च 1897 को उनका निधन हो गया।

(साभार: www.tv9hindi.com)

BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LIMITED.
COMFED
Sudha
BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LIMITED.
E-Mail: comfed.patna@gmail.com | Toll Free No.: 18003456199 | www.sudha.coop
COMFED

आज की नायिका

“मैं उड़ रही हूँ”

बेबी हालदार

“मैं उड़ रही हूँ। मैं अभी भी उड़ रही हूँ। औरत को कोई कमज़ोर नहीं समझे और औरत भी अपने को कमज़ोर नहीं समझे।” यह कहते हुए उनकी आँखें डबडबा गई थीं परंतु होंठ मुस्कुरा रहे थे। माथे पर संघर्ष की लकीरें अनगिनत कहानियाँ बयां कर रही थीं जिनमें दर्द था, आँसू थे, भूख और ग़रीबी की बेबसी थी। अपनी कहानी बताते हुए जब उनके हाथ हवा में लहरा रहे थे, मैंने देखा उनकी श्रम से तपी फौलादी हथेलियाँ जो जिजीविषा की अद्भुत मिसाल बन झाड़ू पोंछा कपड़ा बर्तन के साथ साथ कलम पकड़ने का हौसला लिये अपनी लकीरें खुद संवार रही थीं। वह और कोई नहीं बेबी हालदार हैं जो घरेलू नौकरानी का कार्य करते हुए अपनी कहानी लिखती हैं और अपनी पहली किताब आलो आंधारी से ही देश विदेश में विख्यात हो जाती हैं।

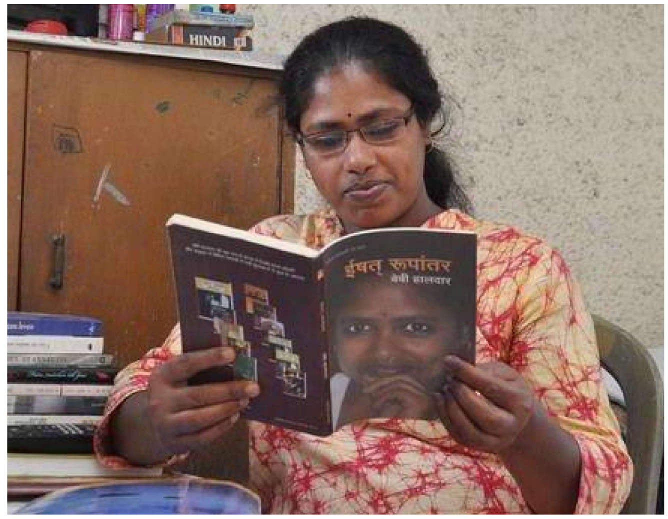

बेबी हालदार के नाम में बेबी है परंतु वह एक ऐसी बेबी थीं जिन्होंने बचपन नहीं जिया। जब होश सँभालने लायक़ हुईं तभी गृह कलह से तंग आकर माँ उन्हें छोड़कर चली गईं और बेबी अचानक बड़ी हो गयीं। उनके शराबी पिता बंगाल के एक छोटे से गाँव से आते थे। वे फौजी थे। जम्मू–कश्मीर में पोस्टिंग के दौरान 1973 में बेबी का जन्म हुआ था। माँ के जाने के बाद पिता ने दूसरी शादी कर ली। पिता के रिटायर होने के बाद परिवार दुर्गापुर बंगाल लौट आया। सौतेली माँ के क्रूर व्यवहार और शराबी पिता के अत्याचार ने मासूम बेबी पर घरेलू कार्यों का बोझ लाद दिया। काम नहीं करने पर गाली एवं पिटाई और अभावों के बीच बड़ा होता बचपन। वो कहती हैं, “मैंने घर में सिर्फ़ भूख और हिंसा देखी। माँ बाप का प्यार दुलार क्या होता है यह कभी नहीं जाना।”

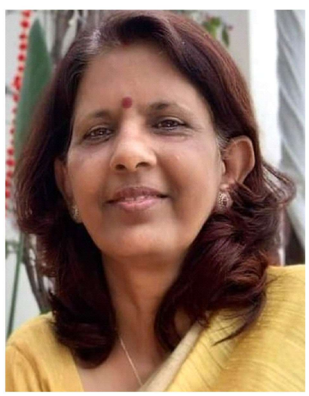

डॉ मीरा मिश्रा

कवयित्री एवं लेखिका

तेरह की होते होते बेबी सौतेली माँ को खटकने लगी थीं। उस समय वो सातवीं कक्षा में पढ़ रही थीं। उनका मामा उनके लिये 28 साल के एक बेरोजगार युवक का रिश्ता ले आया जिसके पास कुछ भी नहीं था। बेबी की शादी हो गई। वह बड़ी खुश थी क्योंकि शादी के दिन उसे अच्छा खाना और कपड़ा मिल रहा था। सब लोग उसकी आवभगत कर रहे थे। उसे नहीं मालूम था कि एक नरक से निकलकर वह दूसरे नरक में धकेली जा रही है। शादी ब्याह क्या होता है उसे कुछ भी तो मालूम नहीं था।

वह ससुराल जा रही थी। मन में डर भी था परंतु उम्मीद की एक किरन भी थी। शायद वहाँ उसे भरपेट खाना मिले, खेलने कूदने की आज़ादी मिले। शायद वहाँ किस्से कहानियों की किताबें मिले, नये दोस्त मिलें।

बचपन की दहलीज़ पार कर किशोरावस्था में कदम रखती अभावों और संघर्षों में पली बढ़ी वह तेरह साल की लड़की क्या जाने उससे पन्द्रह साल बड़े युवा पति की शारीरिक और मानसिक जरूरतें क्या होती हैं। वह बताती हैं कि उनका पति रोज रात को शराब पीकर आता और उनके थके हुए शरीर पर अपनी मनमानी करता। वह चीखती चिल्लातीं तो उन्हें पीटता, उनके बाल नोचता, घसीटता। उनकी गुहार सुनकर भी उन्हें वहाँ कोई बचाने वाला नहीं था। सभी कहते शादी के बाद यह सब होता ही है। वह शाम को ढलते सूरज से थोड़ा और ठहरने की गुहार करती। धीरे धीरे उसने सब कुछ आत्मसात् कर लिया। वह लड़की है उसको सब कुछ करना होगा, सहना होगा। 19 साल की कमसिन उम्र में ही वह तीन बच्चों की माँ बन गई। बच्चों में अपना दुख दर्द भूलने लगी। बच्चे बड़े हो रहे थे। घर में अशांति और अभाव के बीच बेबी को अब अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता होने लगी। वह सोचने लगीं, “क्या उनका जीवन भी मेरी तरह ही होगा? नहीं कभी नहीं। मैं अपने बच्चों को पढ़ाऊँगी, बड़ा आदमी बनाऊँगी।”

और एक दिन अकारण सबके सामने पीटे जाने के बाद उन्होंने पति का घर छोड़ने का फ़ैसला कर लिया। वह तीनों बच्चों को लेकर मायके आ गयीं। परंतु सौतेली माँ और शराबी पिता उन्हें वहाँ रखना नहीं चाह रहे थे। वह बच्चों को लेकर एक दिन दुर्गापुर से दिल्ली के लिये निकल पड़ीं। पिता ने भाइयों का टूटा फूटा

आज की नायिका

अधूरा पता देकर बेबी से किसी तरह छुटकारा पा लिया था।

दिल्ली स्टेशन से उतरकर वह फरीदाबाद चली गयीं। वहाँ पता दिखा दिखाकर लोगों से भाई के बारे में पूछतीं परंतु हर जगह निराशा ही हाथ लगती। एक जगह उम्मीद रंग लायी परंतु पता चला वे लोग वहाँ से अन्यत्र चले गये हैं। एक औरत ने सहारा देकर अपने घर में रखा। उन्हें यकीन हो गया दुनियाँ में अच्छे लोग भी हैं। उसी औरत ने उन्हें दूसरे घरों में झाड़ू पोछा लगाकर कुछ कमाने की सलाह दी। वह निकल पड़ीं अपनी अगली राह पर। आखिरकार एक दिन भाई का ठिकाना मिल गया। वह परिवार सहित गुड़गांव में रह रहा था। बेबी बच्चों को लेकर गुड़गांव आ गयीं। भाई भाभी आश्चर्यचकित थे।छोटी आमदनी, छोटा घर। उन्होंने अपने दोस्त से कहकर बेबी को एक घर में रहने और घरेलू नौकरानी का काम करने के लिये पास में ही इन्तज़ाम कर दिया। बेबी ने तीन साल इधर उधर दो तीन घरों में काम किया। किराये के घर में रहीं। वह चाहती थीं लोग उनके काम की इज्ज़त करें, उनसे अच्छा बर्ताव करें परंतु हमारे समाज में घरेलू कामगार के श्रम की इज्ज़त तो दूर कहीं कहीं अछूत की तरह समझा जाता है। उनका थाली गिलास भी अलग होता है। बेबी को यह सब अच्छा नहीं लगता था। एक दिन सुनील नाम का एक ड्राइवर उन्हें प्रेमचन्द के नाती प्रबोध कुमार श्रीवास्तव जी के घर ले गया। उन्हें घरेलू सहायिका की ज़रूरत थी। प्रबोध जी ने उन्हें काम दे दिया। कुछ दिनों बाद उन्होंने बेबी को बच्चों सहित अपने घर के ऊपर वाले कमरे में रहने का बन्दोबस्त भी कर दिया। एक दिन उन्होंने बात करने से पहले बेबी को सामने की कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। उन्हें आश्चर्य मिश्रित खुशी हुई। प्रबोध जी ने कहा, ''तुम मुझे मालिक नहीं, तातुश कहो। मेरे बेटे भी यही कहकर बुलाते हैं। तुम मेरी बेटी जैसी हो।'' उन्हें लगा उनके दूसरे पिता मिल गये हैं जो सचमुच पितातुल्य हैं। वह बच्चों को लेकर उनके पास आ गयी। प्रबोध जी के तीन बेटे थे। उनके घर में अब एक बेटी आ गयी थी। बेबी की ज़िंदगी ने फिर करवट बदली। यहाँ उसे सब कुछ मिल रहा था जो वह चाहती थी। तातुश ने बच्चों का स्कूल में दाखि़ला करा दिया। सबको भरपेट खाना, आशियाना और अच्छे लोग मिल गये थे। वह खुश थी।

एक दिन किताबों की आलमारी की डस्टिंग करते समय वह एक किताब

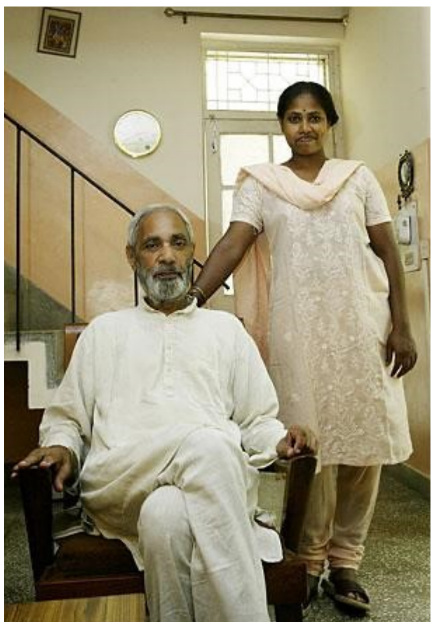

निकालकर पढ़ने लगी। आलमारी में बांग्ला की कई किताबें थीं। तातुश ने देख लिया। तुम पढ़ना लिखना जानती हो? ''हाँ मैं सातवीं में पढ़ रही थी तभी शादी हो गयी।'' बेबी ने जवाब दिया। उन्होंने तुरंत तस्लीमा नसरीन की जीवनी 'आमार मेयेबेला 'उन्हें पढ़ने को दिया। बेबी को किताब पढ़ते हुए लगा वह उसकी ही कहानी है। तातुश ने कहा तुम भी तस्लीमा की तरह लिख सकती हो। उन्होंने अपनी मेज़ की दराज से एक क़लम और कापी निकाल कर बेबी के हाथ में थमा दिया। बेबी को कुछ समझ में नहीं आया। ''मैं क्या लिख सकती हूँ?'' ''तुम लिख सकती हो। जो तुम्हारे मन में हो वही लिखो।'' बेबी बंगला भाषा लिखना पढ़ना जानती थी। वही उनकी मातृभाषा भी थी। रात को काम से फ़ुर्सत मिलने पर बेबी लिखने बैठीं। वह सोचने लगीं, ''मेरे जीवन में तो बहुत कुछ ऐसा घटा है जिसे मैं किसी को बता नहीं सकती। क्यों न वही लिखूँ।'' बेबी की कलम चलने लगी। तसलीमा नसरीन उनकी प्रेरणा बन गयीं। उन्हें कई बार पता भी नहीं चलता था कि लिखते हुए कितनी रात बीत गयी है। एक दिन तातुश ने पूछ लिया, ''क्या लिखी हो मुझे दिखाओ''। बेबी ने सकुचाते हुए कापी लाकर तातुश के समक्ष रख दिया। तातुश ने पढ़ना शुरू किया। पढ़ते पढ़ते उनकी आँखें भर आयीं। अच्छा लिखी हो और लिखो। उन्होंने उसकी कहानियां अपने मित्रों को पढ़ने को दी। सबको बहुत अच्छी लगीं। बेबी बांग्ला में लिख रही थीं। प्रबोध जी उसे हिन्दी में अनूदित करने लगे। यह सिलसिला लगातार जारी रहा। एक दिन तातुश ने बेबी के सामने एक नयी किताब रख दी। ''इसे पढ़ो''। ''इस पर तो मेरा नाम लिखा हुआ है,'' बेबी बोलीं। '' हाँ यह तुम्हारा ही नाम है और यह किताब भी तुमने ही लिखी है।'' बेबी को विश्वास नहीं हुआ। किताब का नाम था 'आलो आंधारी' मतलब अंधेरा उजाला। बेबी सचमुच अंधेरे से उजाले की ओर कदम बढ़ा रही थीं। कलकत्ता के एक पब्लिशिंग हाउस रोशनाई ने 2002 में उनकी किताब हिन्दी में छापी। प्रबोध जी ने उसका बंगला से हिन्दी में अनुवाद किया था। 2004 में वहीं से उनकी बांग्ला में लिखी पहली पुस्तक आलो आंधारी छपी जिसका तस्लीमा नसरीन के हाथों लोकार्पण हुआ। फिर शुरू हो गया समीक्षाओं का दौर। बेबी के लेखन की तारीफ़ों का दौर। बेबी रातों रात प्रसिद्ध हो गईं। घरेलू नौकरानी से चर्चित लेखिका बन गयीं। साक्षात्कार के लिये रोज कई लोग उनके घर आने लगे। उन्हें रेडियो और दूरदर्शन पर बुलाया जाने लगा। इसी बीच बीबीसी के एक इन्टरव्यू के बाद उनकी किताब का उर्वशी बुटालिया ने अंग्रेज़ी में अनुवाद किया जिसका शीर्षक था Life Less

आज की नायिका

Ordinary इस अनुवाद को उनकी प्रकाशन संस्था जुबान बुक्स और पेंग्विन ने छापा। उसके बाद उनकी ख्याति विदेशों तक पहुँच गयी। फिर तो फ्रेंच, चीनी, जापानी कोरियाई सहित सोलह भाषाओं में उनकी किताब का अनुवाद हुआ। आलो आंधारी का देश विदेश की 26 भाषाओं में अनुवाद हुआ है। उनकी किताब से लिटरेरी फेस्टिवल का आग़ाज़ होने लगा। आलो आंधारी उस समय की बेस्ट सेलर पुस्तक बन गयी। उन्हें देश विदेश के लिटरेरी फेस्टिवल में बुलाया जाने लगा। अपनी पहली विदेश यात्रा जो हांगकांग की थी, का अनुभव सुनाते हुए वह बताती हैं, ''मुझे एयरपोर्ट पर रोक दिया गया। लोगों को लगा कि इस साधारण वेशभूषा में दिखने वाली सातवीं पास महिला को लिटरेरी फेस्टिवल में कोई कैसे आमंत्रित कर सकता है।' उन्हें साथ ले जा रही पब्लिशर उर्वशी बुटालिया ने बहुत समझाया परंतु उन्हें नहीं जाने दिया गया। अन्त में जब हांगकांग की आमंत्रित संस्था ने वहाँ की सरकार से बात की और उन लोगों ने यहाँ की सरकार से, तब उन्हें अगले दिन जाने की अनुमति मिली। उन्होंने फ्रांस, जर्मनी सहित कई देशों की यात्रायें कीं और अपनी पुस्तक के अनुवादित संस्करणों के लोकार्पण में शरीक हुईं। जर्मनी में बीस बाइस जगह उनकी किताब पर चर्चा और समीक्षा हुई।

प्रबोध जी जो स्वयं भी हिन्दी, बांग्ला सहित कई भाषाओं के जानकार मानव विज्ञान के प्रोफेसर थे, उनकी इस यात्रा के मार्गदर्शक और सहयोगी बने। बेबी हालदार ने उनके घर में अठारह साल तक काम किया। बाद में पहली पुस्तक से मिली रायल्टी से उन्होंने अपना आशियाना बनाया, बच्चों को पढ़ाया लिखाया। वहाँ से निकलने के बाद उन्होंने चार साल तक एक एनजीओ में रहकर रेड लाइट एरिया में काम करने वाली महिलाओं के बीच कार्य किया। उनकी किताब को एनसीईआरटी की पुस्तक में शामिल किया गया। बंगाल में भी सातवीं कक्षा के पाठ्यक्रम में उनकी पुस्तक को जगह दी गयी।

इस बीच बेबी हालदार की कलम लगातार चलती रही। आलो आंधारी के बाद उनकी एशत रूपांतर सहित तीन और पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उन्होंने कई पत्र पत्रिकाओं में लेख भी लिखे। उन्हें देश विदेश में कई सम्मानित पुरस्कार भी मिले। बेबी बताती हैं कि उन्हें अकेले बिना पति के दिल्ली की तंग बस्तियों में रहने पर कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। लोग बार–बार उनसे उनके पति के बारे में पूछते। अकेली औरत को देखकर लोग छेड़ने, ताने कसने और कई बार ज़बरदस्ती घर में घुसने की कोशिश करते। उन्हें समाज की ऐसी बुरी ताक़तों से बच्चों के अलावा खुद को भी बचाना पड़ता था। जब वह अपनी किताब की वजह से सुर्खियों में आ गयीं तब भी बहुत लोगों का ऐसा ही व्यवहार रहा परंतु बहुत लोगों ने उन्हें भरपूर प्यार और इज्ज़त भी दी। हाँ, उनके पिता अब अपनी बेटी पर गर्व करने लगे थे। रिश्तेदारों के बीच अब उनकी अच्छी आवभगत होने लगी। अपने संघर्ष के दिनों में जब वो किसी से मदद की गुहार करतीं तब सभी आंखे फेर लेते थे। अब स्थिति बदल गयी थी लेकिन अब भी बहुत लोगों को उनके लेखन पर विश्वास नहीं होता था। बेबी स्वयं भी खुद को लेखिका नहीं मानती हैं। वह कहती हैं मैंने तो अपनी आपबीती लिखी है। कुछ नया थोड़े ही लिखा है। पिछले दो सालों में उन्होंने कैंसर से भी जंग जीती। इलाज में बहुत पैसे खर्च हो गये। उनकी तथा बेटे की नौकरी छूट गयी परंतु लोगों का प्यार और सहायता के लिये उठे हाथ उन्हें हर मुश्किल से निजात दिलाते रहे। वह गरीब, शोषण की शिकार महिलाओं के लिये अंधेरे में राह दिखाने वाली ज्योति बन गयीं। मंच पर बोलते हुए बेबी कहती हैं, ''संघर्ष तो मेरे जीवन का अहम हिस्सा है। मुझे कभी छोड़ता ही नहीं। मैंने

भी उसे कसकर पकड़ रखा है। वही तो मुझे इस ऊँचाई पर लाया है। उसके कारण ही तो मैं उड़ रही हूँ। अभी भी उड़ रही हूँ।'' अपने इरादों की पक्की, मुश्किलों को अपनी खिलखिलाहट से दूर भगाने वाली काम वाली बाई बेबी हालदार जानती हैं कलम की ताक़त। वो कहती हैं कि श्रम और कलम अगर दोनों मिल जायें तो सचमुच हम आसमान फ़तह कर सकते हैं। लेखक तो हमेशा गरीब रहता है परंतु श्रम का हाथ पकड़कर वह ग़रीबी से लड़ सकता है। आज वो हम सबकी प्रेरणा हैं।

अब वो किसी के घर में नौकरानी का काम नहीं करतीं परंतु पूछने पर कहती हैं कि मैं चाहे कितना भी रुपया कमा लूँ अगर ज़रूरत पड़ेगी तो आज भी काम वाली बाई बनने से ज़रा भी पीछे नहीं हटूँगी। कैंसर ने भी उनका हौसला पस्त नहीं किया। उनकी कई पांडुलिपियाँ छपने के लिये तैयार हैं। वो फिर ग़रीब, शोषण की शिकार, परिवार समाज द्वारा सतायी उपेक्षित महिलाओं के लिये कुछ करना चाहती हैं। बेबी हालदार सचमुच अंधेरे का उजाला हैं। हमें उनपर नाज है।

बिहार सरकार
मध निषेध उत्पाद एवं निबंधन विभाग
नशे से होने वाले दुष्परिणाम
किसी भी शिकायत एवं सूचना हेतु संपर्क करें हमारे टोल फ्री नंबर पर
15545
या
1800-345-6268
स्वास्थ्य की क्षति
आर्थिक हानि
घरेलू हिंसा -झगड़े
सड़क दुर्घटना
समाज में शर्मिंदगी
शिक्षा का नुकसान
नशा नहीं, जीवन चुनें
मध निषेध उत्पाद एवं निबंधन विभाग बिहार द्वारा जनहित में जारी
Follow Us On:
#NashaMuktBihar

www.emanjari.com

इक्विटी फाउंडेशन

123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी

पटना, 13

equityasia@gmail.com

www.emanjari.com

06122270171

6207092051

7979772023

RNI Title Code: BIHBIL02442

© इक्विटी फाउंडेशन